

तेरे मेरे लिए-२

दादा जे. पी. वास्वाणी

तेरे मेरे लिए
(2)

जे. पी. वास्वाणी

अनुवादक
डॉ. परसो जे. गिदवाणी

साधु वास्वाणी जयन्ती
25-11-1992

12-00 रुपये

समर्पण

प्रातःस्मरणीय गुरुदेव

के

चरण कमलों में

प्रकृति का साकार स्वप्न दादा जशन वास्वाणी

सिन्ध देश की पावन पृथ्वी पर पदार्पण करते हैं हैदराबाद सिंध में बालक जशन पहलाजराइ वास्वाणी। धन्य है वह भूमि जिस पर इस महान सन्त ने जन्म लिया।

पवित्र सिन्धु नदी के तट पर जहाँ ऋषियों एवं मुनियों ने चारों वेदों की रचना की, उस तट पर बसे एक सुन्दर नगर हैदराबाद सिन्ध के प्रसिद्ध एवं धार्मिक वास्वाणी परिवार में काली माता के अनन्य भक्त श्री लीलाराम के घर में जन्म हुआ २५ नवंबर १८७९ पर, भारत के आधुनिक ऋषि साधु टी. एल. वास्वाणी का। साधु वास्वाणी की महानता का वर्णन करने में यह लेखनी असमर्थ है। ये सन्त बाल ब्रह्मचारी थे। तपस्या एवं त्याग की मूर्ति थे। ईसवी सन् १९०२ में दर्शन (Philosophy) में एम. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के साथ-साथ उन्होंने विश्व के अनेक धार्मिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। उन्होंने मधुर भक्ति गीतों की रचना की है जो 'नूरी ग्रंथ' में संकलित है। इसके अलावा विश्व के भिन्न भिन्न धर्मों, संतों एवं महान कवियों तथा लेखकों पर विद्वतापूर्ण ग्रंथ लिखे हैं।

साधु टी. एल. वास्वाणी के ज्येष्ठ भ्राता श्री पहलाजराइ और उनकी धर्मपत्नी कृष्णादेवी के यहाँ जन्म लिया शिशु जशन ने।

संस्कार माता - पिता के :

बालक जशन के पूज्य पिता श्री पहलाजराइ बड़े धार्मिक प्रवृत्ति के थे, तथा बड़े ही विद्वान थे। सादगी, नाम-स्मरण, लोक सेवा एवं विनम्रता श्री पहलाजराइ के जीवन के अटूट् अंग थे। और माता कृष्णादेवी गुरुनानक

देवजी की भक्त थी। बालक जशन के जीवन में उनके धर्मपरायण माता पिता ने अनेक सद्‌गुणों के बीज बोए।

विद्यार्थी जीवन :

आप जब चार वर्ष के ही थे तब आपके पिता ने आपको टीकमदास चूहड़मल पाठशाला में दाखिल करवाया। जन्म से ही आपकी बुद्धि तीव्र थी। तीन वर्षों के ही भीतर आपने न केवल सिन्धी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करली, अपितु निजी अध्यापक की सहायता से अंग्रेजी भाषा भी सीख ली।उसके बाद आपने अंग्रेज़ी माध्यम Rosary School कराची में शिक्षा ग्रहण की। आपने अपनी प्रखर बुद्धि का परिचय देते हुए एक ही वर्ष में तीन कक्षाएँ पाँचवी, छठी, एवं सातवीं उत्तीर्ण करके दिखा दी। उसके बाद आपने कराची के सेन्ट पैट्रिक स्कूल से आठवीं एवं नवीं कक्षाएं उत्तीर्ण की। इसी बीच आपके पूज्य पिता का अचानक देहान्त हो गया। इससे घर की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। इसी कारणवश आपको सेंट पैट्रिक स्कूल छोड़कर एन. जे. वी. ह़ायस्कूल में दाखिला लेना पड़ा। जहाँ से आपने हायस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके उपरांत आपने कॉलिज् की शिक्षा के लिए डी. जे. सिन्ध कॉलिज् में प्रवेश लिया। चार वर्षों के उपरांत आपने बी. एस सी. प्रथम श्रेणी से पास किया और भौतिक विज्ञान (Physics) विषय में प्रथम रहे। इस सुन्दर सफलता के लिए आपको कॉलिज् में फे लो (Fellow) के रूप में नियुक्त किया गया। इसके फलस्वरुप आप कॉलिज् मे पढ़ाते भी थे और एम. एस सी (M. Sc) भी करते थे। आपके शोध -प्रबन्ध (thesis) का विषय था Scattering of X-rays by Solids. दो वर्षों के पश्चात् आपने M.Sc. की उपाधि प्राप्त की। आपके शोध प्रबन्ध के परिक्षक थे नोबल पुरस्कार विजेता सर सी. वी. रमण। कॉलिज् के प्रोफ़ेसर तथा विद्यार्थियों में आप बहुत ही लोकप्रिय थे। आपको बड़े बड़े

पदों के लिए प्रस्ताव थे, किन्तु बचपन से ही आपका आध्यात्मिक सम्बन्ध था अपने चाचा एवं गुरुदेव साधु वास्वाणी जी से।

सम्पर्क सत्‌गुरु से :

बचपन से ही आप का संपर्क साधु वास्वाणी जी से था। विद्यार्थी जीवन में कराची में पढ़ते हुए आपका सम्बन्ध साधु वास्वाणी जी से बहुत अधिक घनिष्ठ हुआ। और आपको जीवन के रहस्य एवं राज़ की परख हुई। इस सन्त के महान आदर्शों ने आप के जीवन पर गहरा प्रभाव डाला और आपके जीवन को एक नया मोड़ दिया। अब आप सांसारिक खजानों को राख के समान समझकर आध्यात्मिक खज़ाने एकत्रित करने में जुट गए। साधु वास्वाणी एवं आप का मिलन था जैसे एक पूर्ण गुरु एवं पूर्ण शिष्य का मिलन। इस अनुपम मिलन से आपके हृदय में प्रभु का प्रेम अंकुरित हुआ। यहाँ पर पाठकों को यह बताना आवश्यक है कि सिन्धी भाषा में बड़े भाई को प्यार एवं श्रद्धा से 'दादा' कहा जाता है, इसलिए साधु वास्वाणी जी को तथा समय आने पर जशन वास्वाणीजी को भी 'दादा' कहकर सम्बोधित किया जाता है।

शिक्षाविशारद (Educationalist) :

आपका अपने गुरुदेव साधु वास्वाणी जी के अनेक कार्यों में अद्वितीय योगदान रहा है। 1962 में पुणे में सेंट मीराज़ कॉलिज् फ़ॉर गर्लस की स्थापना हुई। कुछ समय के लिए इस कॉलिज् के प्रिंसिपल प्रोफ़ेसर के. एन. वास्वाणी रहे, परन्तु शीघ्र ही गुरुदेव की आज्ञा पाकर आपने पूरे चौदह वर्ष इस पद को अवैतनिक, बड़ी सफलता पूर्वक संभाला और बालिकाओं को आदर्श शिक्षा देने के सुन्दर प्रयत्न किए। आप की शिक्षा के प्रभाव से बालिकाओं में सेवा और सादगी तथा प्रार्थना एवं पवित्रता के सुन्दर संस्कार पड़े। आप

का जीवन भक्ति, कर्म, ज्ञान, सत्य, जीव दया एवं प्यार का एक अनोखा संगम है तथा श्रीकृष्ण की गीता की शिक्षा का साक्ष्य है।

साहित्यिक योगदान :

विभाजन से पूर्व जब साधु टी. एल. वास्वाणी ने सिन्ध प्रान्त में अंग्रेज़ी भाषा में भगवद् गीता पर प्रवचन आरंभ किये, तब आप उन प्रवचनों की एक साप्ताहिक रिपोर्ट लिखकर छपवाते थे और बाँटते थे। इसके अतिरिक्त आप Excelsior नामक मासिक पत्रिका का संपादन करते थे। इस के द्वारा आप अपने गुरुदेव साधु वास्वाणी और अन्य संतों की वाणी को अपने सुन्दर एवं सरल शब्दों में व्याख्या करके लोगों तक पहुँचाते थे। ऐसा माना जाता है कि इस पत्रिका का वितरण (circulation) उस समय की प्रसिद्ध पत्रिका 'सिन्ध आबजर्वर' से भी अधिक था। विभाजन के पश्चात् 'इन्डिया डायजेस्ट' (India Digest) पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ, जिसके प्रमुख संपादक भी आप ही थे। 1954 में मासिक पत्र East and West Series का प्रकाशन शुरू हुआ, (जो अब तक प्रकाशित हो रहा है) जिसके संपादन का कार्यभार कई वर्षों तक आपको संभालना पड़ा। इसमें पूज्य साधु वास्वाणी एवं आपके द्वारा लिखित विश्व के संतों के दार्शनिक विचारों का एक अनमोल खज़ाना है। इसके अतिरिक्त आपने समय समय पर भिन्न भिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकें अंग्रेजी एवं सिन्धी भाषा में लिखी हैं जो अत्यधिक लोकप्रिय हुई हैं। इनमें से कुछ पुस्तकों का अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है।

आध्यात्मिक पथ प्रदर्शन :

गुरुदेव साधु वास्वाणी जी के जीवनकाल में ही ऐसा प्रतीत होने लगा था जैसे दादा जशन उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी होंगे। 16 जनवरी

1966 जब साधु वास्वाणीजी ब्रह्मलीन हुए तब लोग आशाभरी निगाहों से दादा जशन की ओर आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिए देखने लगे। तब से दादा जशन ने साधु वास्वाणी मिशन की बागडोर संभाली है।

आपने अपनी मधुर मुस्कान, सुन्दर उपदेशों, रूहानी बातचीत तथा प्रेमभरे व्यवहार द्वारा हज़ारो हृदयों को प्रभु के मार्ग पर आकर्षित किया है। संसार में रहते हुए लोगों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कई भक्तजन पत्रों द्वारा आपसे समस्याओं का समाधान जाने का प्रयत्न करते हैं। आप सदैव शिक्षाप्रद एवं सरल शब्दों द्वारा सभी पत्रों के उत्तर देते हैं।

देश विदेश से आए हुए कई प्रेमियों के नम्रनिवेदन पर आप समय समय पर भिन्न भिन्न स्थानों की यात्रा करते हैं तथा अपने गुरुदेव का सुन्दर संदेश पहुँचाते रहते हैं। आपसे मिलने पर लोगों के होठों पर मधुर मुस्कान तथा आँखों में प्रसन्नता के अश्रु आ जाते हैं और बिछड़ने पर उदासी एवं दु:ख के आँसू। आप का कहना है कि मनुष्य का जीवन आजीविका से कहीं अधिक मूल्यवान है, इसलिए उचित होगा कि मनुष्य शरीर के लिए आवश्यक भोजन के साथ साथ आत्मा के भोजन का भी विचार करें। इस जीवन का उद्येश्य केवल पैसा कमाने तथा भोजन करने तक ही सीमित नहीं है अपितु वास्वतिक उद्येश्य है आत्मदर्शन। आपके गुणरूपी गुलिस्तान के फूलों का पूर्ण रूप से वर्णन करना इस लेखनी के लिए संभव नहीं है। संभवत: इतना कहना पर्याप्त होगा कि आप जैसे महबूब को पृथ्वी पर जन्म देकर प्रकृति ने स्वयं अपना स्वप्न साकार किया है।

साधु वास्वाणी मिशन की गतिविधियाँ (Activities)

आपके रग रग में दया का दीपक प्रज्वलित हो रहा है। आपके गुरुदेव

द्वारा स्थापित किये गए अनेक लोक कल्याण एवं सेवा के कार्य आपके मार्गदर्शन में न केवल सुचारू रूप से चल रहे हैं, अपितु उनका अत्याधिक विस्तार भी समय समय पर हो रहा है। विशेष रूप से शैक्षणिक संस्थाएं जैसे स्कूल एवं कॉलिज्, जिनमें हज़ारों विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ साथ उनके चरित्र के निर्माण की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। और अस्पताल एवं चिकित्सालय सुन्दर कार्य कर रहें हैं और इनमें कई रोगग्रस्त लोगों की सेवा की जाती है। कितने ही अपंग एवं असहाय लोगों की तथा मरीज़ों की संस्थाओं को भोजन, फल, वस्त्र आदि की सहायता दी जाती है। इसके अलावा लोगों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए कई सत्संग होते हैं, जिनमें कई लोग आकर भजन कीर्तन में सम्मिलित होते हैं। और पूज्य साधु वास्वाणी एवं आपके प्रवचन सुनकर वे आध्यात्मिक राह पर चलने का प्रयास करते हैं।

साधु वास्वाणी मिशन के अनेक कार्यों से व्यक्तिगत रूप से जुड़े हुए होने के बावजूद भी आप छोटी बड़ी बात पर बारीकी से ध्यान देते हैं। आप सदैव मुस्कराते रहते हैं और विनम्रता के साथ साथ गंभीर से गंभीर बातों को भी बड़ी विनोदप्रियता से हल करने में आप बहुत निपुण हैं।

✦✦✦

यह पुस्तक **'तेरे मेरे लिए'**-(2) दादा जशन के सिन्धी पुस्तक 'रूह रिहाण'- (2) का अनुवाद है। हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक में दिए हुए इस रूहानी रहबर के अमृत वचन प्यासे हृदयों की प्यास बुझाएंगे, और उन्हें सान्तवना देंगे।

हम अत्यधिक आभारी हैं डॉ. परसो गिदवाणी के, जिन्होंने बड़ी श्रद्धा से इस पुस्तक का सिन्धी से हिन्दी में अनुवाद किया है। उन्हें इस उत्तम

कार्य के लिए धन्यवाद! इस पुस्तक तथा प्रूफ़ आदि में हमें सहायता दी है श्रीमती पुष्पा गिदवाणी, कुमारी शीला सिपी, कुमारी चम्पा टहिलरामाणी, एवं लता दासवाणी ने। मैं सबका हृदय से आभार मानता हँू। अन्त में श्री. सुरेन्द्र शहाणी जिन्होंने पुस्तक लेज़र प्रिन्टर पर तैयार की है, एवं परशुराम प्रिन्टिंग प्रेस, जिन्होने इस पुस्तक के सुन्दर कव्हर की छपाई की तथा श्री विजय बी. अंग्रे जिन्होंने सुन्दर कव्हर को डिज़ाइन किया, इन सब का मैं हृदयपूर्वक आभार मानता हूँ।

सीतल जी. मेंघाणी

विषय - सूची

प्रभु ही सच्चा मित्र है

दादा : आज का विचारः-

"दीन दर्द दुःख भंजना, घट घट नाथ अनाथ,
सरण तुमारी आइयो, नानक के प्रभ साथ!"

(श्री सुखमनी साहबः अष्टपदी २ः श्लोक)

प्रभु का एक नाम है "दुःख भंजन"। प्रभु कौन? जो हमारे दुःख और दर्द को दूर करता है। ऐसे प्रभु के पास हम कैसे जाएँ? किस भाव से जाएँ? गुरु साहब कहते हैं:- "हे प्रिय! ऐसे प्रभु के पास तुम दीन बनकर जाओ। जो दीन, निर्धन और नम्र होकर, स्वयं को शून्य मानकर प्रभु के पास जाता है उसके दुःख दर्द का निवारण प्रभु स्वयं करता है! प्रभु है दुःखभंजन।"

गुरु साहब आगे क्या कहते हैं? प्रभु कण कण में विद्यमान है। दूर नहीं है। किसी मंदिर तथा गुरुद्वारे में जाने की आवश्यकता नहीं है। हर स्थान पर प्रभु विद्यमान है। वह घट घट वासी है। "घट घट नाथ अनाथ" वह प्रभु अनाथों का नाथ है। इस जग में जिसका कोई रक्षक नहीं, जिसको आश्रय देने वाला कोई नहीं, स्वयं प्रभु उसका नाथ है। ऐसे प्रभु के लिए गुरु साहब कहते हैं "सरण तुमारी आइयो"!

प्रभु! मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। "नानक के प्रभु साथ!" वह सदैव साथ है। न केवल इस जन्म में, परन्तु जन्म जन्म में मेरे साथ है।

वह जो सदैव साथ है, सर्वशाक्तिवान है, सर्वज्ञ है, ऐसे प्रभु को छोड़कर हम कहाँ कहाँ नहीं भटकते हैं। पर जब हम संकट में पड़ जाते हैं, और हमें कहीं से कोई सहायता नहीं मिलती तब हमें ईश्वर की याद आती है और हम प्रभु की शरण लेते हैं।

"दीन दर्द दु:ख भंजना घट घट नाथ अनाथ,

सरण तुम्हारी आइयो, नानक के प्रभ साथ!"

प्रभु के पास हम दीन बनकर आएँ, नम्र बनकर आएँ और शून्य बनकर आएँ। प्रभु! हम में न सामर्थ्य है, न शक्ति है, और न ही ज्ञान। ना हम! ना हम! तू हो! तू हो! हम तेरी शरण में आए हैं। तू ही हमारे दु:ख दर्द दूर करो।

द्रौपदी की वार्ता आपने सुनी है। राजा युधिष्ठर ने जुआ खेला और वह अपना राज हार जाता है। फिर स्वयं को, अपने भाईयों को, और द्रौपदी को जुआ में हार जाता है। तदनंतर पाँच पाण्डव जो राजा थे, अब दास बनकर कौरवों की दरबार में बैठे हैं। दुष्ट दुशासन वहाँ उपस्थित है। दुर्योधन उसे कहता है:– "यह द्रौपदी अब रानी नहीं हमारी दासी है। इसे पूरी सभा के सम्मुख वस्त्रहीन करो। देखो, दुर्योधन कैसी आज्ञा देता है।

एक बार द्रौपदी ने दुर्योधन की हंसी उड़ाई थी। दुर्योधन के मन में क्रोध की ज्वाला भड़क रही थी। तब उसने कहा:– "एक दिन मैं अवश्य इससे बदला लूँगा"। मेरे प्रिय मित्रो! आप कभी किसी की हंसी मत उड़ाना।"

द्रौपदी को क्रोध आता है, क्योंकि वह अब भी स्वयं को रानी मानती है, किन्तु वह अब रानी नहीं है। द्रौपदी भीम की ओर देखती है, भीम जो ऐसा योद्धा था कि यदि वह केवल खड़ा हो जाए तो सब कांपने लगते थे, परन्तु भीम का सर झुका हुआ है, क्योंकि वह जानता है कि वह अब एक दास है, कौरवों का एक चाकर। हमारे मन की वृत्ति प्रबल है। यदि मैं मानता हूं कि मैं राजा हूँ, मैं बादशाह हूँ, तो क्या मजाल कि कोई मेरे आगे टिक सके, मेरी शक्ति सहस्रगुणा बढ़ जाती है। यदि मैं मानता हूँ कि मैं एक दास हूँ तो मेरी सम्पूर्ण शक्ति क्षीण हो जाती है। मनुष्य का

आचरण अधिकतर उसके मन की वृत्ति पर निर्भर करता है। मुझे याद आता है कि जब मैं छोटा बालक था, एक रात जब मैं घर लौटा तो वहां काफ़ी अन्धेरा था। बत्ती नहीं जल रही थी मुझे प्यास लगी और मैंने जाकर पानी का गिलास भरा। मैंने एक दो घूँट ही पिये होंगे तो ऐसा लगा कि गिलास में सांप है। अरे, मैनें सांप का पानी पिया है! जैसे ही यह विचार मेरे मन में आया, मेरी संपूर्ण शक्ति क्षीण हो गई और सोचा अब शीघ्र ही मेरे प्राण निकल जाएंगे। मैंने चिल्लाना शुरु कर दिया। मेरी पूज्य माताजी और मेरे भाई दौड़े दौड़े आएं। मैंने उनसे कहा कि, तुम सबसे मैं विदा लेता हूँ। और वहीं पर मैं गिर पड़ा। मुझ में इतनी भी शक्ति नहीं थी कि मैं थोड़ा सा भी हिल सकूँ। मेरी माताजी ने तुरंत डाक्टर को बुला भेजा। इस बीच मेरा भाई बोला, "देखूं तो कैसा सांप है?" गिलास में देखा तो उसमें रबर बैन्ड दिखाई दिया। उन दिनों हमें रबर बैन्ड के गेंद मिलते थे। उस गेंद का रबर बैन्ड पानी के घड़े में जा गिरा था। जैसे मैंने गिलास में पानी भरा वैसे ही वह रबर बैन्ड गिलास में आ पड़ा। मेरा भाई बोला:– "अरे! सांप कहां है? यह तो रबर बैन्ड है।" जैसे ही मैंने सुना रबर बैन्ड है, तुरन्त मुझ में शक्ति वापस आ गई, मैं उठ खड़ा हुआ और बोला, "कौन कहता है कि मैं मरता हूँ!" मनुष्य का आचरण उसके मन की वृत्ति पर निर्भर करता है।

भीम ने समझा कि वह एक दास है और उसका सर नीचे था।

अब द्रौपदी ने अर्जुन की ओर देखा। अर्जुन योद्धा, जो बहुत से युद्ध जीत कर आया था। अर्जुन का सर भी नीचे था। फिर वह भीष्म पितामह की ओर देखती है, उनसे कहती है:– "आप धर्मरक्षक हैं, आप तो कम से कम आवाज़ उठाइये।"

भीष्म ने कौरवों का नमक खाया था इसलिए वे कुछ न बोल सके। अब द्रौपदी कहती है कि मैं श्रीकृष्ण की शरण लूँगी। "तुम बिन मेरी कौन खबर ले, गोवर्धन गिरधारी" द्रौपदी पुकारती है। उसकी पुकार सुनकर

श्रीकृष्ण आकर प्रकट होता है। उससे कहता है:- "मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा, परन्तु एक बात तुम मुझे बताओ, क्या अब तक तुमने कभी कोई कपड़े का टुकड़ा किसी को दान में दिया है? यदि दिया होगा तो उस टुकड़े में से, मैं ढेर सारे थान बना दूँगा।" तब द्रौपदी को याद आता है और कहती है:- "एक बार मैं एक नदी के किनारे खड़ी थी। एक सन्यासी नदी में स्नान कर रहा था। सन्यासी केवल लंगोट पहना हुआ था। लहर आई और उसके लंगोट को बहा ले गई, और वह सन्यासी नग्न हो गया। इस दशा में वह बाहर कैसे निकल सकता था। मुझे दया आ गई। अपनी साड़ी में से टुकड़ा फाड़कर उस सन्यासी की ओर भेजा ताकि वह उसे बाँधकर बाहर आ सके।" कृष्ण बोला:– "यह काफी है। उस टुकड़े में से मैं ढेर सारे थान निकाल सकता हूँ। जैसे जादूगर अपने मुख से पट्टियां निकालता जाता है और पट्टियों का अंत नहीं होता।" दुशासन भी साड़ी खींचता जाता है परन्तु द्रौपदी की साड़ी बढ़ती ही जाती है, खत्म ही नहीं होती।

"तुम बिन मेरी कौन खबर ले, गोवर्धन गिरधारी।"

इस दीनता के भाव में उसने श्याम को पुकारा। भीम योद्धा, अर्जुन, नकुल, सहदेव, युद्धिष्ठर इनमें से कोई भी मेरी रक्षा नहीं कर सकता। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य बड़े बुजुर्ग बैठे हैं। कोई भी मेरे लिए एक अँगुली तक नहीं उठाता।

"सरन तुमारी आइयो, नानक के प्रभ साथ!"

तुम्हारी शरण में आई हूँ। केवल तू ही मेरा सहायक है। न केवल इस जन्म में, परन्तु जन्म जन्म में तू मेरे साथी बनकर रहे हो। तुम ही मेरी रक्षा करो, तुम ही मेरे सहायक बनो। जब इस भाव में हम बढ़ते हैं तो हमें यह विश्वास होता है कि हमारा दूसरा कोई नहीं है। हम में न तो शक्ति है, न ही बल है, न ही बद्धि। हमारी बुद्धि भी तू, हमारा बल भी तू, हमारी शन्ति भी तू, तब प्रभु आकर हमारा सहारा बनता है

दीन दर्द दुःख भंजना, घट घट नाथ अनाथ,

सरण तुमारी आइयो, नानक के प्रभ साथ!

जो भी शरण में आता है उसे प्रभु नहीं छोड़ता। कहता है:- "हर हाल में, हर बात में प्रत्येक विचार में मेरा स्मरण करो तो फिर मैं तुम्हारे साथ हूँ और तुमसे दूर नहीं हूँ।

पुणे से करीब डेढ़ सौ मील दूर पंढरपुर नामक एक बड़ा तीर्थ स्थान है। विठोबाजी का वहाँ मन्दिर है। प्रतिवर्ष कितने ही यात्री आषाढ़ मास की एकादशी पर वहाँ पैदल जाते हैं। प्रतिदिन यात्री ५ अथवा १० मील पैदल चलते हुए, खड़ताल हाथों में लेकर, कीर्तन करते हुए जाते हैं। वर्षा हो अथवा धूप, यात्री इसकी परवाह नहीं करते। खाने-पीने की इन्हे कोई चिन्ता नहीं होती। कभी किसी गाँव में से कभी किसी शहर में से गुजरते हैं। और लोग न जाने कितनी वस्तुएँ लाकर उन्हें देते हैं। इन यात्रियों की सेवा करना लोग बड़े पुण्य का कार्य समझते हैं। कितने ही पढ़े लिखे लोग भी वहाँ जाते हैं।

एक लड़की के सम्बन्ध में एक वार्ता कही गई है। पत्रा नाम की एक लड़की थी। वह अति सुन्दर थी। जो भी उसे देखता तो समझता था कि उसका मुख संगमरमर से तराश किया हुआ है। इतना सौन्दर्य मनुष्य को ऊँचा भी उठा सकता है, और नीचे भी गिरा सकता है। सौन्दर्य कितनों के हृदय में वासना उत्पन्न करता है। यह कामाग्नि मनुष्य की वैरी है और कभी संतुष्ट नहीं होती। एक बार यदि हमने अपने भीतर वासना को आने दिया तो फिर फँस जाते हैं। यह एक ऐसी अग्नि है जो भड़कती रहती है, कभी तृप्त नहीं होती है। उसे तृप्त करने का अर्थ है अग्नि में तेल डालना। यह बालिका पत्रा स्वयं तो पाप में गिरती औरों को भी उसमें ढकेलती थी। उसे बहुत धन मिलता था। बड़े बड़े धनी उसके पास आते थे और उसे धन देते थे।

एक दिन पत्रा अपने घर की बालकनी में खड़ी थी। देखा एक जुलूस जा रहा था। उसने सोचा यह जुलूस कहाँ जा रहा है। इस जुलूस के यात्री वारकरी थे। वह नीचे उतरी और उनसे पूछाः– "आप कहाँ जा रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया:- "हम पंढरपुर जा रहे हैं, जहाँ श्याम सुन्दर का मंदिर है। वहाँ हमें निश्चित समय पहुँचना है"। "श्याम सुन्दर!" सुनते ही उसे न जाने क्या हो जाता है। कहती है:- "मुझसे थोड़े ही अधिक सुन्दर होगा। मैं तो सुन्दरतम बालिका हूँ। मेरे पास कहाँ-कहाँ से लोग आते हैं। राजा आते हैं, धनी आते हैं। मुझसे अधिक सुन्दर कोई न होगा। कोई भी स्त्री चाहे सुन्दर नहीं भी हो, फिर भी दर्पण में देखकर स्वयं से कहेगी कि मुझसे अधिक सुन्दर और कोई नहीं। यह स्वाभाविक है। स्वयं को पेन्ट व पाउडर लगाकर सुन्दर बनायेगी, परन्तु यह पत्रा निस्सन्देह सुन्दर थी।

पत्रा इन यात्रियों से पूछती है कि, "क्या वह मुझसे भी अधिक सुन्दर है?" "अरे!" वे बोले:- "वह तो इतना सुन्दर है कि उसका सौंदर्य अवर्णनीय है। उसके सौन्दर्य के सम्मुख तुम एक बादल के समान हो। उसका सौंदर्य चौदवी के चंद्रमा के समान है। उसके सौन्दर्य के सामने तुम कुछ भी नहीं हो।"

पत्रा आतुर हो उठती है। कहती है, यदि इतना सुन्दर है तो मैं भी चलकर उसे देखूं। देखो प्रभु कैसे हमारे हृदय में अपने लिए आकर्षण उत्पन्न करता है। यह लड़की पापों में डूबी हुई थी, परन्तु प्रभु की दृष्टी इस पर पड़ती है। और जिस पर प्रभु की दृष्टि पड़ती है, वह चाहे कितना ही पाप में डूबा हुआ हो, कितना ही दुराचारी हो, पापी हो, एक क्षण में ही प्र उसे अपनी ओर आकर्षित करता है। पत्रा कहती है:- "यदि इतना सुन्दर है तो मैं भी उसके दर्शन के लिए चलूँ।" पत्रा यात्रियों के जुलूस में कीर्त में सम्मिलित हो जाती है। जैसे जुलूस चल रहा है, वह मीठा नाम सुन जा रही है। विठोबा पांडुरंगा! विठोबा पांडुरंगा! उसका अंत:करण उज्ज्व

होता जाता है। यात्रियों से पूछती है:- "यदि श्याम इतना सुन्दर है तो क्या वह मुझे मन्दिर के अन्दर आने देगा? मैं तो पापों में ग्रस्त हूँ"। वे कहते हैं:- "श्याम सुन्दर है पापियों एवं गुनाहगारों का। श्याम सुन्दर है पतित पावन।" पतित अर्थात् गिरा हुआ। गिरे हुओं को अपनी भुजाओं का सहारा देकर उन्हें ऊपर उठाता है।"

ऐसा हमें बताया गया है कि एक दिन श्याम सुन्दर को देखा तो वह एक भ्रष्ट बालिका के घर से निकल रहा था। उससे पूछा गया:- "श्याम तेरा इन वैश्याओं से क्या प्रयोजन?" तब श्याम क्या बोला? कैसा मधुर उत्तर दिया। वह बोला:- "डॉक्टर तो जाएगा रोगियों के पास, स्वस्थ लोगों के पास क्यों जाएगा।" कहेगा:- "तुम तो ठीक-ठाक हो तुमसे मेरा क्या काम? मेरा काम तो है उनसे जिनकी रूह पाप में रंगी हुई है।" पत्रा से कहते हैं:- "श्याम है ऐसा पतित पावन"।

पत्रा अत्याधिक नम्र होती जाती है। विठोबा के मन्दिर में पहुँचने के पूर्व ही उसके जीवन में परिवर्तन आ जाता है। मन्दिर में पहुँचते ही श्याम सुन्दर के चरणों में गिरकर रोती है, पुकारती है:-

"मुझे माफ़ करो! मुझे साफ़ करो! दया-द्वार खोलो!"

यात्रियों को जितना समय वहाँ पर रहना था, रहकर लौटने लगते हैं। पत्रा से कहते है:- "अब लौटो। तुम्हें घर छोड़ते चलें।" पत्रा कहती है:- "मेरा घर तो है श्याम सुन्दर के चरणों में।" श्याम सुन्दर के चरणों में गिरकर कीर्तन करने लगती है, और पुकारती है:- "श्याम! मुझे अपनी सेवा में लगाओ। मुझे अपने द्वार की एक दासी बनाकर रखो। मुझे स्वीकार करो। बस मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए।"

पत्रा के सौन्दर्य की प्रशंसा दूर दूर तक जा पहुँची थी। बिदार का मुसलमान बादशाह, उसे भी यह समाचार मिलता है। वह अपने एक सेवक से कहता है कि पत्रा को मेरे महल में ले आओ। बादशाह के हृदय में

वासना उत्पन्न होती है। यह कामाग्निी सदैव शत्रु है, यह कभी तृप्त नहीं होती।

बादशाह की निद्रा भंग हो गई है। उसकी पाचन शक्ति नष्ट हो चुकी है। उसे कुछ भी नहीं सूझता। कहता है:- "मैं पत्रा को देखूँ, पत्रा से मिलूँ, पत्रा से सहवास करूँ।"

वह एक सेवक को अनेक लोगों के साथ पत्रा को बुलाने भेजता है। वे आकर पत्रा को बादशाह का संदेश सुनाते हैं। पत्रा कहती है:- मैं उस दुष्ट, पापी के पास कैसे जा सकती हूँ? उसके हाथ मुझे स्पर्श करेंगे, मैं वहाँ कैसे जा सकती?" पत्रा कहती है, "मैं क्या करूँ?" बादशाह के सेवकों से कहती है:- "तुम रुको मैं अपने स्वामी से आज्ञा लेकर बताती हूँ"। भीतर जाती है जाकर पुकारती है:-

दीन दर्द दुःख भंजना, घट घट नाथ अनाथ,

सरण तुमारी आइयो, नानक के प्रभ साथ!

पत्रा कहती है:- "श्याम! मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ। मुझे कैसे उस दुष्ट के हाथ में भेज दोगे? तू मेरी रक्षा कर।" कहते हैं उस समय बिजली कड़कती है। जो लोग वहाँ उपस्थित थे वे देखते हैं कि विठोबा की मूर्ति में से ज्वाला निकलती है। पत्रा के शरीर में विलीन हो जाती है और पत्रा उसमें समा जाती है। पत्रा गिर पड़ती है। अब उसका गायन बन्द हो जाता है। बिदार के बादशाह के लोग आकर देखते हैं कि पत्रा मृतक पड़ी है। पत्रा के शरीर में प्राण नहीं हैं। जाकर राजा से कहते हैं कि पत्रा की मृत्यु हो गई। जो भी प्रभु की शरण में आता है प्रभु उसकी रक्षा अवश्य करता है।

दीन दर्द दुख भंजना, घट घट नाथ अनाथ,

सरण तुमारी आइयो, नानक के प्रभ साथ!

गुरुवाणी के उक्त शब्दों में कितनी शक्ति है। आपको भी जब कठिनाई का सामना करना पड़े, इन्ही शब्दों का उच्चारण करिए। आप देखेंगे शक्ति आकर आपकी रक्षा करेगी। गुरु सा:हब की वाणी में शक्ति है, श्रीकृष्ण के शब्दों में शक्ति है; संतो सत्पुरुषों, महापुरुषों के वाक्यों में शक्ति है। इसी कारण मैं आपसे बार-बार यह निवेदन करता हूँ कि कोई न कोई सूत्र अथवा नाम लेकर बार-बार उसका उच्चारण करिए, आप अपने जीवन में विचित्र चमत्कार देखेंगे।

दीन दर्द दुःख भंजना, घट घट नाथ अनाथ,

सरण तुमारी आइयो, नानक के प्रभ साथ!

(मनीला : 8-4-83)

तेरी इच्छा पूर्ण हो

दादा : आज का विचार :-

"तुझको मालूम सब कुछ है, तेरी इच्छा पूर्ण हो!"

हर हाल में मेरे प्रियतम! तेरी इच्छा पूर्ण हो। तुझे सब मालूम है तू सर्व ज्ञानी है, तू सर्वदर्शी है। तेरी इच्छा पूर्ण हो। सब प्रार्थनाओं में सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना यह है:-

"तेरी इच्छा पूर्ण हो!"

हम प्रार्थना करना शुरु करते हैं जब हम Nursery अथवा Kinder garten में होते हैं। किसी न किसी अर्थ के लिए अथवा किसी न किसी वस्तु के लिए हम प्रार्थना करते हैं। यह भी अच्छी बात है। परंतु शाह साहब कहते हैं:- "माँग उसी से मंगता, जो सदैव ही देता रहता है।"

मेरे प्रिय, तुम माँगो उसी से जो हर रोज़ देता ही रहता है। औ क्या नहीं वह देता? सबसे बड़ी बात तो यह है कि उसने हमें श्वास दिय है। यदि वह हमारा श्वास निकाल दे तो हम वहीं पर ढेर हो जाएँ। माँगन इत्यादि सब समाप्त हो जाए।

एक प्रेमी:- दादाजी! माँगने की तो आवश्यकता ही नहीं है।

दादा :- माँगने की आवश्यकता है, क्योंकि हमें इच्छाएँ हैं। ज इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है, तब माँगने की आवश्यकता नहीं है। अन्तका में केवल यह शरीर गिर जाता है। इच्छाएँ नहीं गिरती! इच्छाएँ, उमं स्वप्न, विचार, ये सब हमारे साथ चलते हैं।

एक प्रेमी:- क्या इसका अर्थ यह है कि सूक्ष्म शरीर में हम इन सब अपने साथ ले जाते हैं और हमें इस संसार में वापस आना पड़ेगा?

दादा:- नि:संदेह, ये सब ले जाते हैं। इस कारण न केवल संसार में आना पड़ेगा परंतु बार-बार आना पड़ेगा।

शाह साहब कहते है:-

"माँग उसीसे मँगता, जो सदैव ही देता रहता है"। परंतु हम उससे नहीं माँगते। हम दूसरों के पास जाते हैं। जब अन्य किसी में उम्मीद नहीं दिखाई देती, तब प्रभु के पास आते हैं। मान लीजिए जब कोई बीमार पड़ता है तो हम सीधे डॉक्टर के पास दौड़ते हैं। कोई हम पर केस करता है तो दौड़ते हैं वकील अथवा जज के पास। कोई हमें कष्ट देता है तो सीधे भागते हैं किसी बड़े नेता के पास। परन्तु प्रभु के पास नहीं जाते।

एक स्त्री थी। उसके पति को दिल का दौरा पड़ा। डॉक्टर आया और कहा कि शीघ्र ही इसे रुबी हॉल नर्सिंग होम मे ले चलो। ॲम्ब्यलॅन्स् आई। ॲम्ब्यलॅन्स् में उस प्यारे भाई को ले जा रहे थे। जब साधु वास्वाणी मिशन से गुज़रे तब वह स्त्री बोली:- "मुझे यहाँ उतार दो, मेरे पति को अस्पताल ले जाओ, मैं शीघ्र ही आती हूँ।" जब उससे पूछा गया कि, "तुम यहाँ क्यों उतर रही हो?" उसने कहा, "मेरा डॉक्टर तो यहाँ है।" उतर जाती है। सीधा पवित्र समाधि पर जाती है। वहाँ जाकर प्रार्थना करती है। कहती है:- "मेरे गुरुदेव! आपही डॉक्टर हैं। आप ही मेरे पति को शफ़ा दीजिए।" शफ़ा तब ही मिलती है जब प्रभु का आदेश होता है।

अस्पताल में उसके पति का कार्डियोग्राम निकालते हैं, कहते हैं, "इसे कुछ भी नहीं है।"

"तुझको मालूम सब कुछ है, तेरी इच्छा पूर्ण हो!" हम माँगते तो रहते हैं परन्तु आखिर देखते हैं कि भला उसीमें है जो प्रभु करता है। इस जीवन में यही पाठ हम में से हर एक को सीखना है। अन्यथा बार बार जन्म-मरण के चक्र में भटकेंगे। यह पाठ सीखें:- "तुझको मालूम सब कुछ है, तेरी इच्छा पूर्ण हो!" तब हमारा जन्म-मरण का चक्र पूरा होगा।

मेरे प्रियतम! तुझे सब कुछ ज्ञात है। मैं तुझसे क्या माँगू? ऐसा व्यक्ति सब स्वीकार करता है। वह माँगता है, पर क्या माँगता है? कहता है:- "प्रभु! मुझे आशीर्वाद दो ताकि मैं अधिक से अधिक उपयोगी बन सकूँ। मुझे अधिक से अधिक आशीर्वाद दो ताकि मेरे द्वारा तेरा प्रेम, तेरा प्यार सारे संसार में प्रकाशमय हो। मुझे नम्र बनाओ, मुझे विनम्र बनाओ, मुझे मधुर बनाओ, मुझे उपयोगी बनाओ, इस दुःख भरे संसार में मुझे अपने प्यार का एक साधन बनाओ।"

हम कुछ न कुछ माँगते रहते हैं। क्यों न माँगे। पर प्रभु से यह प्रार्थना करें कि "हे प्रभु! मुझे कुछ ज्ञात नहीं है। तू सर्व समर्थ है, और सर्वदर्शी है। तू सर्व ज्ञाता है। भूतकाल तथा भविष्यकाल सब तुझे मालूम है। जो होने वाला है और जो हो गया है वह सब तुझे ज्ञात है। मैं जो भी माँग रहा हूँ वह ठीक है अथवा नहीं, तुझे ही मालूम है।

बच्चा बहुत ही हठ कर रहा था। माँ बोली:- "कितना ही हठ करेगा मैं तुझे नहीं दूँगी।" हमने पूछा:- "किस बात पर झगड़ा है?" माता बोली:- "बालक माचिस माँग रहा है। दो वर्ष का बालक है, इसे मैं माचिस कैसे दे सकती हूँ। दियासलाई जलाएगा तो आग लग जाएगी उसका क्या हाल होगा?"

बालक बोला:- "यह माता किस काम की? मुझे कहती है कि मैं तुझे प्यार करती हूँ। माचिस माँगता हूँ तो नहीं देती। पड़ोसन ने आकर माचिस माँगी तो उसे तुरन्त दे दिया। परन्तु जब मैं माँगता हूँ तो मुझे नहीं देती। यह प्यार कैसा? अब मुझे मालूम पड़ गया कि मेरी माता मुझसे अधिक पड़ोसन को प्यार करती है।" माता को मालूम है कि बालक के लिए माचिस ठीक नहीं है।

"प्रभु न मेरी इच्छा, परन्तु तेरी इच्छा पूर्ण हो!"

हम जब इस विनय प्रार्थना (Prayer of petition) की प्रथ

मंजिल पर हैं तब हम माँगते हैं। परन्तु इससे एक हानि यह है कि जो हम माँगते हैं, यदि वह हमें नहीं प्राप्त होता, तो फिर हमारा विश्वास टूट जाता है। कहते हैं:- "प्रभु है ही नहीं, यदि है तो बहरा है।" यह एक बड़ी क्षति है। हम माँगें, अवश्य माँगें, परन्तु अन्त में यह भी जरुर कहें:- "न मेरी इच्छा पर तेरी इच्छा। मेरे प्रियतम! तेरी इच्छा पूर्ण हो!" माँग-माँगकर आखिर हम देखते हैं कि भला उसीमें है जो ईश्वर करता है। तब स्वयं को प्रभु के हवाले कर देते हैं।

एक रानी थी। उसे एक ही राजकुमारी थी। यह इतिहास की बात है। राजकुमारी बीमार पड़ गई। यह रानी बड़ी ईश्वरभक्त थी। प्रभु से प्रार्थना करती है। पुकारती है:– "प्रभु! मुझे एक ही राजकुमारी है, एक ही पुत्री है। किसी प्रकार भी तू इसकी रक्षा कर।" डॉक्टरों ने कई दवाइयाँ दी। परन्तु कुछ फ़र्क नहीं पड़ा। रानी प्रार्थना करती रही। बहुत रोती रही और आँसू बहाती रही। राजकुमारी की दशा बिगड़ती गई, रानी पुकारती ही रही:- "प्रभु! मुझे यह पुत्री अवश्य चाहिए। किसी भी प्रकार इसे स्वस्थ करो।"

एक सत्पुरुष वहाँ पर उपस्थित थे। वे रानी से कहते हैं कि:- "तुमने प्रभु से विनय प्रार्थना (Prayer of Petition) की है, अर्ज किया है। अब क्यों न इसे प्रभु को सौंप दो, समर्पण प्रार्थना (Prayer of surrender) करो।" चार प्रकार की प्रार्थनाएँ हैं। प्रथम प्रार्थना है विनय प्रार्थना (Prayer of Petition) और तीसरी प्रार्थना है समर्पण प्रार्थना (Prayer of Surrender) रानी सत्पुरुष से पूछती है:- "समर्पण प्रार्थना क्या है?" सत्पुरुष कहते हैं:– "समर्पण प्रार्थना यह है कि तुम प्रभु से कहो कि, यह राजकुमारी मेरी थोड़े ही है, तेरी है।" सत्पुरुष रानी से पूछते हैं कि राजकुमारी की आयु कितनी है? रानी कहती है कि इसकी आयु १५ वर्ष है। तब सत्पुरुष कहते हैं:– "१५ वर्षों के पहले राजकुमारी कहाँ थी? वह

तो तेरी केवल १५ वर्षों से है। परन्तु इसकी आयु तो अनन्त है, तो इत वर्ष कहाँ थी? तुम्हारे पास तो केवल १५ वर्षों से है। और तुम कह रह हो कि यह बेटी मेरी है। ज़्यादा से ज़्यादा तुम्हारे पास और कितना सम रहेगी– ५० वर्ष, ६० वर्ष, ७० वर्ष आखिर तो तुम्हें भी जाना है। फि तुम्हारी कहाँ से हुई? सब प्रभु को समर्पित कर दो। उससे कहो: जो ते इच्छा। प्रभु यह पुत्री तेरी है मेरी नहीं।"

रानी ऐसा ही करती है। न इस विचार से कि राजकुमारी बचेगी वस्तुतः वह उसे प्रभु को समर्पित करती है। हम कितनी ही बार समर्पि तो करते हैं क्यों कि हम से कहा जाता है कि समर्पित करो और फि देखो प्रभु क्या करता है। फिर हम परिणाम का इन्तजार करते हैं। मै प्रभु से प्रार्थना की कि मुझे नौकरी में पदौन्नति (Promotion) मिले। फि बार-बार अपने साहब के कागज़ देखता रहता हूँ कि उसने क्या लिखा है समर्पित करने का यह अर्थ कदापि नहीं है। समर्पित करने का अर्थ है पदौन्नति मिले अथवा नहीं फिक्र नहीं। प्रभु! तुझे मालूम है कि मेरा भ किसमें है।

इस रानी ने राजकुमारी को प्रभु के सुपुर्द कर दिया। वह कहती है: "जब से मैंने सच्चाई से राजकुमारी को ईश्वर के चरणों में समर्पित व दिया, उसी समय से राजकुमारी की दशा सुधरने लगी।"

यह आवश्यक नहीं है कि हर हालत में सुधार होगा। परन्तु ऐ दशा में दुख का आभास नहीं होगा।

"तुझको मालूम सब कुछ है। तेरी इच्छा पूर्ण हो!"

एक प्रेमी :- समर्पित करने से जो आनंद का आभास होता है, उचित है या नहीं?

दादा :- आनंद से अधिक विश्वास और दृढ़ होगा, और आप स को प्रभु के समीप समझेंगे।

इस मंजिल पर चौथी प्रार्थना हृदय से निकलती है। प्रशंसा की प्रार्थना (Prayer of Praise) प्रभु की प्रशंसा के गीत हृदय से उठते हैं। हम प्रभु की महिमा गाते हैं। इसलिए आपने देखा होगा कि संतों की वाणी प्रभु की महिमा से भरी हुई होती है।

एक प्रेमी :- एक समय संत तुकाराम ने अनेक साधनाएँ की। कितनी ही प्रार्थनाएँ की। इतना कि, एक बार उसने बेहाल होकर श्रीकृष्ण को भले-बुरे शब्द भी कहे।

दादा :- यह मंजिल हर एक के जीवन में आती है। इसे कहा गया है 'निराशाई की रात्रि (night of darkness) ।जिन्हें प्रभु में पूर्ण विश्वास है, वे ही इस मंजिल को पार कर जाते हैं। उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। परन्तु हमारे जैसे जब इस मंजिल से गुजरते हैं तो अपना विश्वास खो बैठते हैं।

एक प्रेमी:- दादाजी! आपने कहा कि चार प्रकार की प्रार्थनाएँ हैं। तीन आपने बताई, बाकी एक कौनसी है?

दादा : प्रथम प्रार्थना है 'विनय की प्रार्थना' (Prayer of Petition) तीसरी प्रार्थना है 'समर्पण की प्रार्थना' (Prayer of Surrender). चौथी प्रार्थना है 'प्रशंसा की प्रार्थना' (Prayer of Praise) और दूसरी है 'मध्यस्थता की प्रार्थना' (Prayer of intercession) । यह प्रार्थना है जब हम अन्य किसी के लिए प्रार्थना करते हैं जिन्हें हम पहचानते भी नहीं हैं। हमारा उनके साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं है। समझ लीजिए चीन में दुष्काल पड़ा है। लोक भूख से बेहाल हो रहे हैं। हमें पता भी नहीं कि वे कौन हैं, फिर भी हम उनके लिए प्रार्थना करते हैं। यह है मध्यस्थता की प्रार्थना। जिसमें अन्य के लिए मोह नहीं है। विनय प्रार्थना में मोह होता है।

मुझे अपनी एक बात याद आती है। मैं जब प्राथमिकशाला में

पढ़ता था। सर्वप्रथम विनय प्रार्थना मैंने उस समय की। उससे पहले कई
और भी प्रार्थनाएँ की। यह थी विनय प्रार्थना (Prayer of Petition)। हमारी
कक्षा अगले दिन सैर (excursion) पर जानेवाली थी और आज मेरे
अतिप्रिय मित्र को बुखार हो गया। मैं उसके घर गया। मैंने उससे पूछा
कि वह आज पाठशाला क्यों नहीं आया, कल हम सैर पर जानेवाले हैं।
देखा उसे बुखार था। उसकी माताजी ने कहा कि यदि इसका बुखार नहीं
उतरा, तो फिर वह उसे सैर पर जाने नहीं देगी। मुझे बहुत ही दुख हुआ।
मैंने सोचा कि मैं अपने प्रिय मित्र के सिवा सैर पर कैसे जाऊँगा? मैं रात
को कई घण्टे जागता रहा। मैंने रो रोकर प्रभु से प्रार्थना की:- "प्रभु इसका
बुखार उतार दो।" सुबह उसका बुखार उतर गया।

यह प्रार्थना वस्तुतः दूसरे की भलाई के लिए नहीं थी, परन्तु यह
प्रार्थना मैंने अपने लिए की थी, कि मेरे सैर का मज़ा किरकिरा हो जाएगा
अगर मेरा प्रिय मित्र नहीं चलेगा। उस दिन से प्रार्थना में मेरा विश्वास
हो गया। मैंने प्रार्थना की और प्रभु ने सुनी। मैंने कहा:-

"निस्संदेह प्रार्थना में शक्ति है"

"तुझको मालूम सब कुछ है, तेरी इच्छा पूर्ण हो!"

प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो। कम से कम यह आदर्श हम अपने सम्मुख
रखें। किसी न किसी दिन अवश्य मंजिल पर पहुँच जाएँगे।

श्री ईशा जिसे अवतार माना जाता है, जब उसे आखिरी दिन पर
यह आभास हुआ कि लोग उन्हें पकड़ेंगे और उनपर झूठा मुकदमा दायर
करेंगे और निर्णय भी देंगे। उन्हें सूली पर चढ़ाएँगे, उनके हाथों तथा पैरों
में कीलें ठोकेंगे, गर्दन में भी कीलें ठोकेंगे। उनका शरीर बहुत ही
नाजुक था। संतों का शरीर हमारे शरीर से ज़्यादा कोमल होता है। हमारा
शरीर अधिक स्थूल होता है, क्योंकि हम अपना शरीर भोग में डाल देते
हैं। जितना ही अधिक शरीर को भोग में डालते हैं उतना ही अधिक हमारा

शरीर स्थूल हो जाता है। संतों का शरीर निर्मल है, कोमल है। जैसे ही यह विचार ईशा के मन में आता है, वह डर जाता है और प्रार्थना करता है:-

"प्रभु! यह परीक्षा मुझसे मत लो!"

लेकिन, तुरन्त ही अपने को सचेत करता है और कहता है:- "प्रभु! न मेरी इच्छा, पर तेरी इच्छा पूर्ण हो। प्रभु! मेरी बात मत सुनना, परन्तु तू जैसा चाहे वैसा ही करना" फिर सूली पर चढ़ता है।

"तुझको मालूम सब कुछ है, तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

हम कितनी ही बार कुछ माँगते हैं और बार-बार माँगते ही रहते हैं, जैसे कि प्रभु ने कुछ सुना ही नहीं। हम भी उसे छोड़ते ही नहीं। माँगते ही रहते हैं। कितनी ही बार प्रभु देता है। जब देखता है कि यह बालक माचिस नहीं माँग रहा तब वह देता है। परन्तु जब देखता है कि यह बालक मुझसे माचिस माँगता है तब कहता है :- "मेरे बालक! माचिस तुझे कैसे दूँ?" लेकिन बालक समझता ही नहीं।

"तुझको मालूम सब कुछ है, तेरी इच्छा पूर्ण हो!" हर हाल में मेरे प्रियतम, "तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

हम भी सदैव प्रभु की इच्छा में राज़ी रहें।

(लोनावला 18-2-1985)

बेहाल का है प्रभु रखपाल

दादा :- आज का विचार :–

ये नयन बहाएं नीर बार-बार,
रक्षा करो, है अंजलि मझदार!

हम में से बहुत ऐसे हैं, जो अपने परिश्रम से, अपनी शक्ति से जाक पार पहुँचते हैं, जिन्हें किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं होती पर हम जो हैं - टूटे हुए औज़ार, हमें कोई ऐसा चाहिए जो हर पग प आकर हमें थामें और आगे ले चलें। हम बार-बार गफ़लत की नींद में गि पड़ते हैं।

रक्षा करो, है अंजलि मझदार!

प्रभु आता है। आकर रक्षा करता है। हम पुकारते हैं। हमारी ए पुकार भी निश्फल नहीं जाती। ऐसा प्रतीत होता है कि हमने इतनी लम्ब चौड़ी प्रार्थनाएँ की, उसने सुनी ही नहीं। प्रभु सुनता अवश्य है परन्तु उचि समय पर उत्तर देता है। प्रभु की घड़ी न एक क्षण आगे चलती है अ न ही एक क्षण पीछे।

रक्षा करो, है अंजलि मझदार!

प्रभु को बड़ी-बड़ी प्रार्थनाएँ नहीं चाहिए। कुछ लोग लम्बी-लम् प्रार्थनाएँ करते हैं। एक बार शुरू करते हैं तो खत्म ही नहीं करते। ह फिर यही प्रार्थना करते हैं:- "इनकी प्रार्थना शीघ्र समाप्त हो ताकि ह उठ सकें।" प्रभु को छोटी प्रार्थनाएँ स्वीकार हैं। एक शब्द अथवा दो श की प्रार्थना। केवल विनम्र नयन उठाकर प्रभु की ओर देखें और उससे प्रार्थ करें:- "Beloved! Thou art by us!" Nothing more is neede

एक गाँव में अकाल पड़ा। निरंतर कई वर्षो तक वहाँ कोई भी फसल नहीं हुई। बेचारे ग्रामवासी एक के पीछे एक खत्म होते गये। अनाज उन्हें मिला ही नहीं। ग्राम के पंचों ने बैठक करके विचार व्यक्त किया और कहा कि अब कठिन समय आ गया है। अब राजा के पास चलकर उनसे प्रार्थना करें कि वे हमारी कुछ सहायता करें। यही समय है जब हम राजा से कोई सहायता माँग सकते हैं। पंचों ने सोचा हम तो है देहाती और हमे न शरीर पर ओढ़ने के लिए ठीक वस्त्र हैं और न ही अन्य कुछ। हम अगर राजदरबार में जाने का प्रयत्न भी करेंगे, तो भी हमें कोई अंदर जाने नहीं देगा। राजाओं के पास तो हट्टे कट्टे चौकीदार होते हैं, वे जब देखेंगे कि हमे तन ढकने के लिए पूरा कपड़ा नहीं है और न ही हम पढ़े-लिखे हैं, तो वे हमें भीतर आने ही नहीं देंगे। अब क्या किया जाए? तब एक प्रमुख व्यक्ति ने कहा कि पास ही एक नगर है, वहाँ चलकर किसी वकील की सहायता ली जाए, जो राजा के पास चलकर हमारी बिनती उनके सम्मुख रखें। सबने कहा:- "ठीक है।" वे वकील के पास गये तो उसने कहा:- "मेरी तो इतनी फी है। क्या तुम दे पाओगे?" बेचारों ने कहा कि "हमारी दशा बहुत ही दयनीय है, देखो हम इतनी फी कैसे दे सकेंगे?" वकीलों के पास प्रभु किसी को न भेजें। वकील ने कहा: "मुझे तो फी अवश्य लेनी है, अन्यथा मैं इतनी दूर राजा के दरबार में जाकर आपका केस कैसे लड़ूँगा और आप लागों के लिए अनाज के पोते कैसे ले आऊँगा?" गाँववाले बेचारे गए, घर में जो भी थोड़ा बहुत था, किसी के पास कोई बर्तन, किसी के पास लोटा, बेचकर वकील को फी दी।

वकील जाकर राजा के सम्मुख उपस्थित हुआ और अपना केस शुरू किया। वकील बहुत ही पढ़े-लिखे होते हैं, चतुर होते हैं। कुछ अपनी चतुरता देखाना चाहते हैं। इस वकील ने भी राज्य का इतिहास शुरू कर दिया के १८३३ में पहली बार अकाल पड़ा, फिर ऐसा हुआ और फिर वैसा

हुआ। बेचारे राजा तो सुन-सुनकर बहुत थक गए और वकील की अ
अधिक ध्यान नहीं दिया। वकील बात करता रहा, करता रहा। (ऐसी
लम्बी प्रार्थनाएँ हमारी हुआ करती हैं।)

आखिर वकील ने बोलना बन्द किया। राजा ने उसकी ओर ध्य
ही नहीं दिया। वह बेचारा बिना कुछ प्राप्त किये ही लौट आया। गाँववा
से आकर कहा:- "मैंने तो तुम लोगों के लिए बहुत किया। एक घण्टा
भाषण दिया परन्तु राजा इतना कठोर हृदयी हैं कि उन पर कोई प्रभ
ही नहीं पड़ा। मैं क्या कर सकता हूँ?" फ़ी तो उसने अपने जेब में ड
दी।

पंच फिर मिले। सबने कहा इस वकील से तो कुछ भी नहीं हु
अब क्या करें? पुराने जमाने में पंचायत होती थी और जब कोई प्रश्न उ
था तो पंचों के पास ले जाते थे और कहते थे "स्वामी! हमारे साथ
अन्याय हुआ है, अब पंच जो निर्णय दें।" पंचों का निर्णय शीघ्र होता
न्यायालयों का मुझे कुछ पता नहीं है। परन्तु न्यायालयों में बहुत झूठ
जाते हैं। आप यदि सच्चाई से अपना किस्सा पंचों के पास ले जाएं तो आ
निर्णय शीघ्र हो जाएगा। आखिर उन्होंने निर्णय किया, कहा कि, "व
से तो हमें कुछ भी लाभ नहीं हुआ, अब किसी सत्पुरुष के पास च
चाहिए। वे हमारी कुछ न कुछ सहायता अवश्य करेंगे।" संतों के पास
तब जाया जाता है जब दुनिया से निराश हो जाते हैं। इसके पूर्व तो उ
ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। वे किसी कोने में छुपे बैठे रहते हैं। ये दे
ऐसे ही एक प्रभु के भक्त के पास आए। सत्पुरुष ने उनसे क
"बड़ी सरल बात है। तुम में से कुछ तीन-चार लोग जो दुबले पतले
वे सब आठ-दस खाली पोते लेकर मेरे साथ चलें। प्रभु सब ठीक कर

ये सब राजा के सामने आकर खड़े हुए। सत्पुरुष ने एक श
नहीं कहा। केवल राजा को खाली पोते दिखाए और देहातियों की द

हालत दिखाई। राजा ने देखा! आश्चर्य में भरकर कहा:- "ऐसी हालत मेरे राज्य में रहनेवालों की हो गई है?" आदेश दिया:- "न केवल दस खाली पोते जो ये लाए हैं, परन्तु सौ पोते अनाज के और भी इनको भरकर दिये जाएं।" तालियाँ बज उठी। एक ही क्षण में न्याय हो गया।

प्रभु को बड़ी प्रार्थनाएँ नहीं चाहिए और बड़े वकील नहीं चाहिए। पर उन्हें चाहिए एक शब्द। और वह शब्द है: जब आपको कोई कष्ट आए, दु:ख आए अथवा आप किसी प्रलोभ में फँस जाऐं- दखिऐ आपका मन चाहता है कि कोई कार्य करें जो आपको नहीं करना चाहिए। एक-एक के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, जिसमें हम नहीं चाहते कि हम उस पाप कर्म में गिरें परंतु न जाने क्यों थोड़े से स्वाद के लिए हम वह पाप कर बैठते हैं। ऐसे समय पर हम अपने हृदय की गहराई से केवल यह प्रार्थना करें:- "रक्षा करो! रक्षा करो!" "Save me! Save me Lord!" यह प्रार्थना पर्याप्त है।

"रक्षा करो, है अंजलि मझदार!"

मेरे प्रियतम! मैं मझदार में हूँ। दूसरा कोई नहीं है जो मेरी रक्षा करे। मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो! यह छोटी सी प्रार्थना पर्याप्त है। लम्बी प्रार्थनाओं से इस छोटी सी प्रार्थना में अत्यधिक शक्ति है।

"ये नयन बहाएं नीर बार-बार

रक्षा करो, है अंजलि मझदार!"

यदि हम यह प्रार्थना आँसू बहाकर करें, तो हमारी प्रार्थना अवश्य ही स्वीकार होगी।

समय-समय पर हमारे जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब शैतान हमें सत्य की राह से दूर ले जाना चाहता है। यद्यपि हम नहीं चाहते, परन्तु हमें भय होता है कि हम क्या करें। उस समय हम अपने आपको असहाय समझते हैं। उस समय हम यह प्रार्थना करें:- "रक्षा करो! रक्षा करो!" हम देखेंगे कहीं से कोई अलौकिक शक्ति आकर प्रकट होगी और हमारी

रक्षा करेगी।

हममें से कितने ही ऐसे हैं जो कहते हैं कि प्रभु को क्यों पुकारें। प्र को सब कुछ ज्ञात है। अवश्य, प्रभु सर्वज्ञ है वह हमारी रक्षा करता प्रभु को सब ज्ञात है, परन्तु फिर भी वह चाहता है कि उसकी शक्ति तक पहुँचे। इस शक्ति को केवल आकर्षित करना है। इस लिए हम शक्ति को ग्रहण करने के लिए तैयार हों। और इसके लिए प्रार्थना क आवश्यक है। इस समय हमारी दशा कैसी है?

देखो, वर्षा हो रही है। हम यदि बाहर जाकर कोई पात्र उल्टा क रख देंगे तो वर्षा का पानी उसमें नहीं पड़ेगा। चारों ओर से बह जाए परन्तु यदि उस पात्र को सीधा करके रखेंगे तो वर्षा का पानी उसमें जाएगा। हमारी दशा भी इस समय यही है। हम उल्टे रखे हुए पात्रो समान हैं। प्रभु की शक्ति तो आती है परन्तु चारों ओर से बह जाती शक्ति भीतर एकत्रित ही नहीं होती। हमें चाहिए कि हम अपना मुख की ओर करें। पात्र सीधा रखें और पुकारें:- "रक्षा करो, है अंजलि मज़दा

प्यारे प्रभु का वचन है कि जो भी हर हाल में, हर स्थान पर, प्र कार्य में मेरी ओर ही देखता है, मेरा सहारा, मेरा ही भरोसा लेत मैं उसे कभी असहाय नहीं करता। मैं सदैव उसके साथ हूँ।" यह उ वचन है, इसलिए पग पग पर हम उसे पुकारें:- "प्रभु! तू मेरे साथ प्रभु! तू सदैव मेरे साथ है।" आप देखेंगे कि आपका जीवन विचि जाएगा।

पुणे के समीप १४ मील की दूरी पर देहू गाँव है। इस गाँव मे सत्पुरुष का जन्म स्थान है। वे बहुत बड़े सन्त थे। महाराष्ट्र के चार महान सन्तों में से एक सन्त तुकाराम थे। वे एक अनोखे सन्त साधारण दुकानदार थे। उनकी किराने की दुकान थी। परन्तु उनपर की कृपा हो जाती है और वे सन्त हो जाते हैं। शिवाजी उन दिनों

क्षेत्र के राजा थे। शिवाजी को सन्तों से अत्यधिक प्रेम था। और उन्हें कीर्तन बहुत अच्छा लगता था। सन्त तुकाराम भाव-विभोर होकर कीर्तन करते थे। भक्तजन नाचने लगते थे। प्रति रात्रि कीर्तन होता था और लोगों को समय का ज्ञान ही नहीं रहता था।

एक दिन शिवाजी ने कहा कि मैं जाकर इस संत के कीर्तन में भाग लेता हूँ। औरंगज़ेब के जासूसों को यह समाचार मिल जाता है कि शिवाजी आज कीर्तन में जानेवाला है। यह समाचार औरंगज़ेब को देते हैं। औरंगज़ेब मुगल बादशाह थे। उन दिनों मुगलों और मराठों के बीच युद्ध चल रहा था। औरंगज़ेब ने कहा:- "यह तो बहुत ही अच्छा अवसर है। यदि शिवाजी वहाँ पर होगा तो मैं अपनी बहुत बड़ी सेना लेकर उसे जाकर घेर लूँगा और सब को पकड़वाकर कारागृह मे डाल दूँगा। फिर युद्ध की आवश्यकता ही नहीं होगी।" अब औरंगज़ेब एक बहुत बड़ी सेना ले आता है। शिवाजी अभी कीर्तन में सम्मिलत हुए ही थे तो औरंगज़ेब की सेना आ पहुँची। लोगों में भाग दौड़ मच गई। लोग भयभीत हो गए। यह देखकर सन्त तुकारामजी बोले:- "चाहे हमारा शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जाए, परन्तु हम अपना कीर्तन बंद नहीं करेगे। हम अपने प्रभु का गुणगान करते रहेंगे। प्रभु भक्त वत्सल है और भक्तों की रक्षा करता है। वह कभी भी भक्तों को नहीं छोड़ता है। इससे भक्तजनों में अत्यधिक शक्ति आ गई और सब मगन होकर कीर्तन करने लगे।

तुकाराम प्रभु से बात-चीत करने लगे। श्रीकृष्ण को महाराष्ट्र में पांडुरंग कहते हैं। तुकाराम कहते हैं :- "पांडुरंगा! तुम यह देख रहे हो, फिर शान्त करके कैसे बैठे हो? तुम किस काम के हो? इतने वायदे किये हैं, क्या तुम्हारे सब वायदे वैसे ही हैं? अब उठो! यह समय बैठे रहने का नहीं है, अब समय है कुछ करने का। उठकर अपना कोई खेल दिखलाओ।" कहते हैं उस समय पांडुरंग के नयनों से एक नीली ज्योति प्रवाहित हुई

और एक मनुष्य घोड़े पर भागता हुआ दिखाई दिया। वह साधारण सिप
जैसा लग रहा था। उसने शिवाजी जैसे वस्त्र पहने हुए थे और वह शिव
जैसा लग रहा था। मुगलों ने उसे देखा। पीछे से वह बिलकुल शिवाजी ज
लग रहा था। उन्होंने समझा कि वह शिवाजी है। सारी सेना उसके
भाग खड़ी हुई। वह घुड़सवार भी बड़ी तेज़ी से भागता गया। अपने
को भगाता, एड़ लगाता हुआ एक जंगल में जा पहुँचा और वहाँ ग
हो गया। उधर भक्तजन बड़ी मौज में कीर्तन कर रहे थे। दो तीन घ
के पश्चात सन्त तुकाराम ने देखा कि वह रोशनी लौट आई और पांड
के नयनों में समा गई। तब सन्त तुकाराम ने कहा:– "तुम धन्य हो। अ
ही तुम भक्तवत्सल हो।" सब कार्य ठीक हो गया। इस घटना का व
एक मुस्लिम ऐतिहासकार ने किया है।

"रक्षा करो, है अंजलि मझदार!"

संत तुकाराम ने बड़ी प्रार्थनाएँ नहीं की। पांडुरंग से कहा:- "
कर क्या रहे हो? अपने वचन का पालन करो"

"रक्षा करो, है अंजलि मझदार!"

यह एक छोटी सी निर्मल प्रार्थना पर्याप्त है। कोई भी छोटीसी प्र
बार बार करें। हमारा अन्त:करण उज्ज्वल होता जाएगा। जैसे जैसे
का ध्यान अधिक करते जाते हैं, वैसे वैसे हम प्रभु के समान होते
हैं। प्रभु के समान होना है अधिक पवित्र होना और अधिक दयालु ह
प्राय: हम बहुत बड़ी बातों में पड़ जाते हैं। फिर स्वयं भी उलझन म
जाते हैं तथा औरों को भी उलझन में डाल देते हैं।

मौलाना जलालुद्दीन रूमी ने एक विचित्र पुस्तक लिखी है, 'मसन
यह पुस्तक फारसी में लिखी हुई है। मौलाना जलालुद्दीन रुमी फार
एक महान विद्वान् थे। उन पर कैसे कृपा होती है यह एक विचित्र
है। उनके जीवन में परिवर्तन आता है।

एक दर्वेश शम्सतबरीज़ उनके घर आते हैं: दर्वेशों को पता है कि किसका रूह कैसा है। वे स्वयं दरवाज़ा खटखटाकर आते हैं। हम उनके पास नहीं जाते। फिर उसके जीवन में परिवर्तन आ जाता है। शम्सतबरीज़ उनसे कहते हैं, "ये जो पुस्तकें तुमने लिखी हैं, जिन पर तुम्हें गर्व है, वे सब नदी में फैंक दो।" गुरु का कहना मानना पड़ता है। पुस्तकें नदी में फ़ैंक देते हैं। जैसे ही पुस्तकें नदी में फैंकते हैं वैसे ही उनके दिल के मानो टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं। उन्हें अत्यधिक दु:ख होता है, क्योंकि ये सब उनके जीवन का परिश्रम था। फिर रोते हैं। तब शम्सतबरीज़ उन्हें कहते हैं:- "तुम रोते हो इन पुस्तकों के लिए। ये पुस्तकें तो राख के समान थी। उस राख पर तुम रो रहे हो। मैं तुम्हें ये पुस्तकें लौटा देता हूँ। तुम्हें पुस्तकें चाहिए?"

फिर कहा गया है कि शम्स तबरीज़ नदी के पानी से कहते हैं:- "वे पुस्तकें जो रूमी ने तुम्हारे अन्दर फैंक दी वे लौटा दो।" लहरें उठती हैं, और उन लहरों पर वे पुस्तकें लौट आती हैं। जब रूमी यह दशा देखते हैं तब वे शम्स तबरीज़ के चरणों में गिर पड़ते हैं। कहते हैं:– "स्वामी! मुझे क्षमा कीजिए! मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।" शम्स तबरीज़ कहते हैं कि, "मैंने तुमसे ये पुस्तकें फैंकने को इसलिए कहा जैसे तुम्हारे द्वारा संसार को ऐसी पुस्तक मिले जिसे संसार भुला न सके। शताब्दियाँ बीतने पर भी वे उस पुस्तक का अध्ययन करते रहें।" इसके पश्चात ही उन्होंने यह पुस्तक मसनवी लिखी है। यह दर्वेश उन दृष्टांतों द्वारा कई शिक्षाएं देते हैं।

एक दृष्टांत एक युवक से सम्बन्धित है। यह युवक एक दिन हजरत मूसा के पास जाता है और उनसे कहता है:– "एक आशा लेकर मैं आपके पास आया हूँ। आप मुझे पशुओं एवं पक्षियों की भाषा सिखाइए, ताकि मुझे प्रभु की गुप्त बातें ज्ञात हो सकें।" यह युवक कहता है कि "मैं

प्रभु के विचार जानना चाहता हूँ, इस कारण जितनी भी भाषाएँ हैं, मैं सीख लूँ- पशुओं की भाषा, पक्षियों की भाषा, जिनकी भाषा सम से मुझे पहले ही सब सूचना मिल सके।"

मूसा ने उसे बहुत ही समझाया कि, "तुम प्रभु को जानने का प्र न करो, इससे हानि ही होती है। प्रभु जो कुछ भी हमसे गुप्त रखता उसमें ही हमारा भला है। नहीं तो प्रभु स्वयं हमारे सम्मुख आकर अ रहस्य खोल देता।" यह युवक कहता है:– "नहीं।" वह प्रतिदिन मूसा पास आता है। आखिर मूसा बहुत परेशान हो जाते हैं और कहते हैं:- " इस मुसीबत से कैसे छुटकारा प्राप्त करूँ?" उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की उससे कहा– "प्रभु! यह युवक सुनता ही नहीं है। मैं क्या करूँ?" प्र कहा:– "इस युवक से कहो कि शैतान इसे विचलित कर रहा है और इस काम में हाथ न डाले क्योंकि यदि वह इस काम में हाथ डालेगा उसकी ही हानि होगी।" मूसा ने युवक को बहुत ही समझाया और क "मैंने अल्लाह से भी बात करली है और अल्लाह भी कहते हैं कि समझाऊँ।" आखिर युवक बोला:- "स्वामी! मैं कहता हूँ 'हाँ' और कहते हैं 'नहीं।' अच्छा तो मुझे केवल कुत्ते और मुर्गे की भाषा सिखा दि क्योंकि एक कुत्ता मेरे पास है जो प्रतिदिन मेरे पास आता है। और मुर्गा भी मेरे पास है जो भी प्रतिदिन मेरे पास आता है। ये दोनों बै आपस में बातें करते हैं। परन्तु मैं समझ नहीं सकता। मुझे केवल इन की भाषा सिखाइए।"

मूसा ने आखिर उससे कहा:- "अच्छा! कल से कुत्ते और मु भाषा तुम्हें समझ में आएगी।" युवक जैसे ही प्रातः काल उठा, जाकर वाले कपड़े का टुकड़ा झाड़ने लगा। उसे यह आदत थी कि सुबह ही रोटी बाँधकर रखने वाला कपड़ा झाड़ता था। जैसे ही वह कपड़ा रहा था तो उसमें से रोटी का एक टुकड़ा गिर पड़ा। मुर्गे ने तुरन्त ह

टुकड़े को चोंच में उठा लिया। कुत्ता बोला :- अरे भाई मुर्गे! तुम तो कितने ही बीज, कीड़े आदि जमीन से निकालकर खा सकते हो। मैं तो वे सब निकालकर नहीं खा सकता। वह जो रोटी का टुकड़ा मिला है, वो भी तुम ले जा रहे हो। यह तो मुझे खाने दो। "इस पर मुर्गा बोला :- "नहीं। नहीं। तुम चिन्ता मत करो। आज तुम्हारे लिए बहुत बड़ी दावत होने वाली है। तुम यदि आज नहीं खाओगे तो फिर दावत में अधिक खा सकोगे।" कुत्ते ने पूछा:- "कौन सी दावत?" मुर्गा बोला:- "हमारे मालिक का घोड़ा आज मरने वाला है। उसका माँस तुम्हें मिलेगा। वह पड़ा होगा। तुम्हें जितना भी चाहिए, खा लेना। इस सूखे रोटी के टुकड़े से तुम्हें क्या मिलेगा। तुम्हारे लिए तो आज बहुत बड़ी दावत है।" कुत्ता बोला:- "बहुत खूब!"

जब युवक ने उनकी बातचीत सुनी, तब वह बोला:- "क्या मेरा घोड़ा आज मरेगा!" तुरन्त बाजार जाकर वह अपना घोड़ा बेच आया। और सोचा अब जिसके पास गया, मरेगा तो उसका ही। मुझे तो पैसे मिले। मूसा ने तो मुझसे बहुत ही कहा:- "मत सीखो। मत सीखो देखो, मुझे पहला ही यह लाभ हुआ।" दुसरे दिन प्रात:काल भी वही बात हुई। उसने कपड़ा जाकर झाड़ा। रोटी के टुकड़े जमीन पर गिर पड़े जो मुर्गे ने उठा लिए। तब कुत्ते ने उससे कहा:- "तुम्हारे जैसा झूठा मैंने कभी नहीं देखा। तुम्हारे कारण मुझे कल भूखा रहना पड़ा। तुमने कहा घोड़ा मरेगा और उसका माँस तुम्हें खाने को मिलेगा। मुझे तो टुकड़ा भी माँस का नहीं मिला। मैं कल पूरा दिन भूखा रहा हूँ। आज भी रोटी का टुकड़ा तुम ले जा रहे हो।" मुर्गा बोला:- "अब सुनो, वह घोड़ा मरा तो अवश्य, परन्तु हमारे मालिक को न जाने कैसे पूर्वाभास हो गया और उसने तुरन्त घोड़ा बेच डाला। आज मैं तुम्हें एक और रहस्य सुनाता हूँ। तुम धन्य हो जो तुमने कल पूरा दिन भूखा गुजारा है। तुम आज भी भूखे रहो। मालिक का ऊँट आज मरनेवाला है। और उस ऊँट का माँस तुम जाकर खाना। तुम्हें अच्छा

माँस मिलेगा। घोड़े के माँस में इतना स्वाद नहीं है। आज ऊँट का म
तुम्हें मिलेगा और तुम्हें कल और आज का खाना मिलेगा।"

मालिक ने जब यह सुना कि उसका ऊँट आज मरनेवाला है, उसने तुरन्त जाकर ऊँट बेच डाला।

तीसरे दिन भी वही बात हुई। रोटी का टुकड़ा गिर पड़ा और ने उठा लिया। कुत्ते ने उससे कहा:- "अरे! तुम जैसे फ़रेबी के लिए क्या कहूँ? मेरा बस चले तो मैं तुम्हारी गर्दन मरोड़ दूँ। तुम्हारे कारण दो दिन भूखा रहना पड़ा है। तुमने कहा था घोड़ा मरेगा, तुम घोड़े माँस खाओगे, तुमने कहा ऊँट मरेगा, और ऊँट का माँस खाने को मिले मुझे न तो घोड़े का माँस मिला और न ही ऊँट का।" मुर्गा बोला:- " मरा तो अवश्य, पर मरा जाकर कहीं दूसरे स्थान पर। मुझे तो केवल चला कि उसका अन्तकाल आनेवाला है। इससे अधिक मुझे कुछ पता चला। मेरे मालिक ने जाकर बेच डाला। आज मैं तुम्हें एक और बात बत हूँ। जो सच होगी, कभी भी असत्य नहीं होगी। आज हमारा मालिक वाला है और उसके रिश्तेदार गरीबों को भोजन खिलाएगें और पशुओं भी खिलाएँगें। आज तो तुम्हें बहुत बड़ी दावत मिलने वाली है क्योंकि ह मालिक धनी है।"

इस बेचारे युवक ने जैसे ही ये शब्द सुने, उसके प्राण निकलने बोला:- "अब क्या करूँ? घोड़े को तो बेच आया, ऊँट को भी बेच अ अब स्वयं को कहाँ बेचूँ? मुझे तो मरना ही है।" तब जैसे कि मैंने है जब अन्य कोई साधन नहीं रहता, तब संतों का, सत्पुरुषों का आता है। वह भी दौड़ता हुआ मूसा के पास आता है। कहता है:- " मूसा! मेरी यह दशा हुई है, अब आप ही मुझे बचाइए।"

"रक्षा करो, है अंजलि मझदार।"

मूसा बोला :- "तुम बचोगे कैसे? मैंने तो तुमसे कहा था वि

बातों में मत पड़ो। तुम घोड़े को तो बेच सके, ऊँट को तो बेच सके, परन्तु इन दोनों कार्यों में घोड़ा बेचने वाले से तुमने धोखे से पैसे लिए और दूसरे को ऊँट बेचकर तुमने धोखे से उससे पैसे लिए। अब तुम स्वयं को किसके पास जाकर बेचोगे?" फिर उसे उपदेश देते हैं जिसमें उससे कहते हैं:- "अब तुम इससे तो बच नहीं सकते। तुमने स्वयं अपना अन्त माँगकर लिया है। परन्तु अब अपना अन्त सफल करो। ईश्वर में विश्वास रखो। प्रभु से कहो:- "प्रभु! जो कुछ भी तू करता है, उसमें ही हमारा भला है। हमें तेरे रहस्य जानने के प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से हम अपनी हानि अपने आप करते हैं।" प्रभु! जो भी रहस्य हमसे गुप्त रखता है, उसमें ही हमारा भला है।"

"रक्षा करो, है अंजलि मझदार!"

व्यर्थ ही हम अपने आपको बहुत सी उलझनों में डालते हैं और फिर हानि उठाते हैं। जो हमें नहीं सुनना चाहिए, उसे हम जाकर सुनते हैं। जो हमें नहीं देखना चाहिए उसे हम जाकर देखते हैं और इसी प्रकार हम स्वयं को हानि पहुँचाते हैं। जो भी समय हमें मिला है उसमें हम बैठकर प्रभु से बातचीत करें।

ऐसा करना पर्याप्त है। प्रभु हर स्थान पर सर्वव्यापी है। हम केवल उसकी ओर देखें। और नम्र नयनों से उसकी ओर देखकर उसे पुकारें। प्रभु आकर प्रकट होगा। जैसे बिजली का बटन है दबाने से बिजली आ जाती है। बिजली ऐसा थोड़े ही कहेगी कि ठहरो, मैं आती हूँ। अभी मैं कार्य में व्यस्त हूँ । नहीं! बटन दबाओ : बिजली आ गई। इसी प्रकार तुम केवल पुकारो : प्रभु तुम्हारे सम्मुख उपस्थित!

(मनीला 7-4-1983)

अपना अंत:करण उज्ज्वल करो

दादाजी: आज का विचार:

अक्षर पढ़ एक, अन्य पृष्ठ सब भुला।

अंत: करण उज्ज्वल कर, अभी पन्ने पढ़ेगा कितने?

मेरे प्रिय! एक अक्षर तुम सीखो। एक अक्षर तुम पढ़ो। दूसरे सब भुला दो। जब हमारे हृदय के भीतर थोड़ी बहुत प्यास उत्पन्न है कि चलकर अपने प्रभु को प्राप्त करें, तब हम सत्संग में आते हैं संतों के वचन सुनते हैं। तदनंतर प्रथम पग जो हम आगे बढ़ाते है यह कि हम पुस्तकों की ओर आकर्षित होते हैं। कई पुस्तकें पढ़ते हैं, भिन्न सन्तों के वचन सुनते हैं। फिर उलझन में पड़ जाते हैं कि अब कैसे बढ़ें। इसलिए फ़कीर फरमाते हैं:–

"अक्षर पढ़ एक, अन्य पृष्ठ सब भुला।"

मेरे प्रिय! मुझे मानुष जन्म मिला है। इस स्वर्ण अवसर को व्य गंवा। यह मानुषिक जन्म तुझे मिला है, मुझे मिला है, हम सबको है, किस कारण?

"अंत: करण उज्ज्वल कर, अभी पन्ने पढ़ेगा कितने?"

मेरे प्रिय! हृदय को उज्ज्वल कर! "उज्ज्वल" अर्थात "च पालिश कर। इस प्रकार पालिश कर कि चमक आ जाय और प्रक जाय। इस प्रकाश को कहते हैं 'नूर', यह नूर हम में से एक एक के विद्यमान है। इस नूर का वर्णन प्यारे साधु वास्वाणी ने अपनी वाणी बार किया है। उनकी वाणी में आपने ये शब्द बार बार सुने हैं

नूर"। यह नूरानी नूर हर एक के भीतर विद्यमान है। इस नूर को देखने के लिए कहीं बाहर हरिद्वार या कैलाश पर्वत पर जाने की आवश्यकता हमें नहीं है। इस नूर को देखने के लिए हमें अपने हृदय को उज्ज्वल करना है। उसे चमकाना है, पालिश करना है। लकड़ी में चमक होती है, वह बाहर से नहीं आती। केवल रंदे से लकड़ी को घसते हैं। इससे इतनी चमक नहीं आती तो Sand Paper लेते हैं। Sand Paper के नम्बर होते हैं। युवावस्था में मैंने बढ़ई का काम सीखा था। शून्य (Zero) नम्बर के Sand Paper से अधिक चमक आती है।

"अंत:करण उज्ज्वल कर।" अंत:करण को उज्ज्वल करना है। निस्संदेह मैं सत्संग में आया, पुस्तकें पढ़ीं, उपदेश सुनें, तीर्थयात्रा पर गया, काफ़ी समय मौन में रहा, परन्तु मैं अंत:करण को उज्ज्वल नही किया तो फिर कोई चारा नहीं। अंत:करण को उज्ज्वल करना है।

"अक्षर पढ़ एक, अन्य पृष्ठ सब भुला।"

"पृष्ठ" अर्थात "पन्ने" । दूसरे "पन्ने सब भुला दो"। सब बातें भुला दो। जितना अधिक पढ़ेगा, उतना ही भ्रान्ति में पड़ जायेगा।

तू धन्य है कि इतनी सारी बातें स्मरण कर बैठा है। परन्तु जब तू ध्यान में बैठता है, तब यह स्मृतियाँ मन को विचलित करती है।

एक दिन पूज्य साधु वास्वाणी ने हमें बताया कि मौन तीन प्रकार का होता है। एक है "स्मृति मौन" (Silence of memory) वह मौन कैसे होगा? जब पृष्ठ सब भुला देंगे।

एक दिन मैं एक पुस्तक पढ़ रहा था। दो अथवा तीन पृष्ठ ही बाकी थे कि मुझे गुरुदेव साधु वास्वाणी ने बुलावा भेजा। मैंने सोचा, दो तीन पृष्ठ ही बाकी हैं, समाप्त करके जाता हूँ। गुरुदेव का कोई जरूरी काम था। फिर दूसरा व्यक्ति बुलाने आया। मैंने कहा अब डेढ़ पृष्ठ बाकी है,

इसे समाप्त करके ही जाता हूँ। फिर तीसरा व्यक्ति आया। मैं बोला बाकी चार पंक्तियां ही है। जब गुरुदेव के पास गया तब उन्होंने पूछाः कर रहे थे? आज इतने संदेश भेजने पड़े। वैसे तो एक ही संदेश पर दौड़े हुए आ जाते हो। और मेरे संदेश के लिए प्रतीक्षा करते हो। आज एक व्यक्ति, दूसरा व्यक्ति और तीसरा व्यक्ति भेजना पड़ा कहा:– गुरुदेव! आज एक ऐसी पुस्तक पढ़ रहा था जो बहुत ही थी। सोचा उसे समाप्त करके आऊँ। तब गुरुदेव ने मुझे निम्न शब्द लि दिये :–

"मूलतः हो तुम अलख के, हृदय की पुस्तक काफ़ी।"

"प्रिय। पुस्तकें तुम क्या करोगे?" उन दिनों मुझे पुस्तकों की लगन थी। सोचता था एक दिन में एक पुस्तक अवश्य पढ़ूं। गुरुदेव :– "हृदय की पुस्तक पढ़ो। उस हृदय की पुस्तक पर एक ही शब्द है- प्रेम, प्यार, मुहब्बत, स्नेह, उत्कण्ठा। "अक्षर पढ़ एक," यह प्या अक्षर तुम पढ़ो। अपने हृदय में प्रभुके लिए प्रेम उत्पन्न करो। तु की मूर्ति, प्रेम की तस्वीर बन जाओ। और दूसरों में वह प्रेम बां

"अक्षर पढ़ एक, अन्य पृष्ठ सब भुला।"

अंतःकरण को उज्ज्वल करना है। यह व्यावहारिक कार्य है। अंत कैसे उज्ज्वल किया जाय? श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि यदि तुम जीवन बनाना चाहते हो तो अपने हृदय को निर्मल रखना आवश्य आध्यात्मिक जीवन के लिए हृदय की पवित्रता (Interior Purifica आवश्यक है। तीन मंजिले इस मार्ग में होती हैं :–

1. The stage of purification 2. The stage of illumin
3. The stage of unification.

सर्वप्रथम पग है Purification "अंतःकरण उज्ज्वल करना"

भगवद् गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को बताता है कि हृदय कैसे उज्ज्वल कर सकते हो। उससे कहता है :– "यदि तुम हृदय को उज्ज्वल करना चाहते हो तो सर्वप्रथम समस्त द्वार बन्द करो। क्योंकि कचरा इन्हीं द्वारों से ही प्रवेश करता है।"

मैं किसी के घर गया। मुझे घर के दरवाजे खुले रखना पसंद है, जैसे शुध्द वायु अंदर आ सके। मैं जैसे ही द्वार खोलने जा रहा था, उस घर की मालकिन मुझसे बोली : - "द्वार मत खोलना।" मैंने कहा: - "क्यों?" तो वह बोली, "कचरा अन्दर आ जाऐगा और मट्टी भीतर आ जाएगी।" इसी कारण आजकल air conditioner लगाये जाते है। Air conditioner चलते रहते हैं और द्वार खोलने की आवश्यकता ही नहीं होती है। द्वार जो खुले हुए हैं उनमें से कचरा भीतर आ जाता है। इस बहिन ने वही शिक्षा मुझे दी जो श्रीकृष्ण ने अर्जुन को श्रीमद् भगवद्गीता में देता हैं।

ये द्वार कौन से हैं? नौ द्वार हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन से कहता है कि तुम जिस नगर में रहते हो वह है नौ द्वारवाला नगर। इस शरीर को उपनिषदों में ऋषियों और श्रीमद भगवद् गीता में श्रीकृष्ण ने नौ द्वार नगर कहा है, पुराने जमाने में हवेलियाँ होती थी जिन्हें एक बहुत बड़ा प्रवेश द्वार होता था। हवेली में बहुत से घर होते थे। जब कमी कोई युध्द होता था, या दंगे फसाद होते थे, तब पहला पहला कार्य यह करते थे कि प्रवेश द्वार बन्द कर देते थे। हम द्वार खोल कर चल करे हैं। कोई चिन्ता ही नहीं है। शत्रु की सेना हमारे चारों और मंडरा रही है, द्वार खुले हुए देखकर सेना अंदर घुस आती है, क्यों कि वहाँ कोई चौकीदार भी नहीं है, सेना घुस आती है।

श्रीकृष्ण कहता हैं कि पहले तुम नौद्वार बन्द करो। सर्व प्रथम दो नेत्र। इन नेत्रों द्वारा कितने ही पाप होते हैं कुछ वर्ष पूर्व साधु वास्वाणीजीने मुझसे कहा था कि टहलना कैसे चाहिए, "आओ ते मैं तुम्हें सिखाऊँ।" वे

मुझसे बोले:- "ऐसे चलो कि चलते समय तुम्हारी आंखें केवल पैरों के अं
तक ही देख पाए, अधिक नही।" हम इधर उधर देखते हैं फिर किसी
किसी सुन्दर रूप पर जा अटकते हैं। नयनों ने काई न कोई सौन्दर्य दे
उस सौन्दर्य ने हृदय में विकार उत्पन्न किया। यह दशा केवल
साधारण मनुष्यों की नहीं है, परन्तु जो इस पथ पर चलने वाले हैं
की भी यही दशा है। मैंने कई बार आपसे इस बात का जिक्र किया
एक गुरु भक्त था। उसने गुरुवाणी का गहरा अध्ययन किया था और क
रहता था। वह अस्सी वर्ष का था, उसके सिर और दाढ़ी के बाल भी स
हो चुके थे। मुझे एक दिन मिला और कहा:– "मुझसे अकेले में मिल स
हो?" इस घटना को बहुत वर्ष बीत चुके हैं। मैं उससे अकेले में मि
आप देखते थे कि वह वृद्धावस्था का व्यक्ति मेरे घुटनों में सिर रख
बालिका के समान रोने लगा। मैनें कहा:- "मेरे प्रिय! तुम्हे क्या कष्ट
बोला :– "अस्सी वर्ष का हो गया हूँ, मेरे बाल सफेद हो गये हैं,
पर झुर्रियां आ गई हैं, अन्तकाल निकट दिख रहा है, तब भी न जाने
रास्ते चलते हुऐ नेत्र कोई सुन्दर रूप देखते हैं और हृदय में विकार उ
हो जाता है।"

थोड़ा सोचो! यह अस्सी वर्ष का वृध्द व्यक्ति जिसके हृदय मे
को पाने की प्यास है, उसे भी विकार आकार विचलत हरते हैं। श्री
कहते हैं द्वार बन्द करो। नेत्र बन्द करो। चलते समय इधर उधर मत
सिर झुका कर चलो। तुम मुक्त हो जाओगे। शत्रु की सेना भीतर
नहीं कर सकेगी।

फरीद साहिब जिनकी वाणी गुरु ग्रन्थ साहब में उल्लिखित
अपने एक अनुभव का वर्णन करते हुए कहते हैं, जब वे छोटे बाल
वे अपने गुरु के पास रहते थे। एक दिन उनके गुरु ने उनसे
"प्रात:काल तुम अंगार लेकर आओ और पानी गर्म करके मुझे दो

स्नान करूँ।" उन दिनों में माचिस नहीं होते थे। अग्नि जलाने के लिए ुत कष्ट करना पड़ता था। इस कारण अग्नि हमेशा जलती ही रहती । जली हुई लकड़ियों पर राख जम जाती थी परन्तु भीतर आग जलती ती थी। यदि आग बुझ जाती थी तो पड़ोस में से किसी से अंगार ले ते थे।

फरीद ११-१२ वर्ष के बालक थे। वे कहते हैं :– "मैं गया और स में ही एक झोपड़ी का द्वार खटखटाया। एक वृध्द स्त्री वहां रहती थी। बुढ़िया से मैने कहा:- "दादीजी, मुझे अंगार चाहिए, अपने गुरु के स्नान लिए पानी गर्म करना है।" वह मुझसे बोली:- "अंगार चाहिए तो क्या उसका मूल्य देने के लिए तैयार हो?" फ़रीद बोला :- "जो मूल्य तुम गो मैं वह देने के लिए तैयार हूँ क्यों कि गुरु को पानी अवश्य गर्म करके है।" बुढ़िया बोली, "मेरा मूल्य है:- "तुम्हारे दो नेत्र!" फ़रीद यह कर डर गया, इधर उधर देखा, परन्तु पास में और कोई झोपड़ी दिखाई ीं दी। बोला :- "अगांर मिलेगा तो यहाँ से ही नेत्र देने हैं तो वे भी , परन्तु गुरु को पानी गर्म करके तो देना ही है।" उन दिनों गुरु के ए अत्यंत श्रध्दा होती थी।

फरीद बोला:- "दादीजी। मेरी आंखे आप अवश्य लें परन्तु अगांर दीजिए ताकि मैं गुरु को गर्म पानी करके दे सकूं।" तब वह बुढ़िया ी :- "मेरे बालक । मैं तुम्हांरी आंखें निकालूगी नहीं परन्तु याद रखो आज से ये आंखे तुम्हारी नहीं, ये आंखे मेरी हैं, क्यों कि तुमने ये मुझे ी है, इन आंखों से किसी को भी अपवित्र निगाहों से नहीं देखना।" द साहब कहते हैं कि "मुझे बचपन में ही प्रथम पाठ यही मिला। यदि निगाहें थोडी भी खिसक जाती थी तो कहता था कि ये आंखे मेरी हैं, ये आंखें बुढ़िया की हैं, मैं इन्हें कैसे अपवित्र करूँ?"

वर्तमान, मनौवैज्ञानिक हमें बताते हैं कि, ८३ प्रतिशत संस्कार हम

आंखों के द्वारा ग्रहण करते हैं। हम आँखों से क्या देखते हैं? प्रायः स
में आनेवाली कोई बालिया कभी सत्संग में नहीं आए, उससे पूछते
"सत्संग में क्यों नहीं आई?" कहती है:- "वीडियो देख रही थी।" आज
ऐसे वीडियो निकले हैं, कि कहते हैं कि एक बार उन्हें देखना शुरु
तो फिर बन्द करना कठिन हो जाता है। जैसे मेरी दशा हुई थी पु
पढ़ रहा था: छोड़ने को मन नहीं मान रहा था। मैं इन्हें कैसे दोष दू?
भी यही दशा थी। परन्तु वीडियो संभवतः पुस्तक से भी अधिक आक
करता है। वस्तुतः होता यह है कि हम जो कुछ भी देखते हैं वह अंत
में एकत्रित होता जाता है। जैसे हम भोजन खाते हैं वह अन्दर जात
इसी प्रकार आंखों से भी हम खाते हैं। मेरे प्रिय! किसी विकार के
भीतर मत आने दो। हमारा घर है, हम उसका द्वार बन्द रखते हैं।
को भी अन्दर आने नहीं देते। यदि कोई आता है तो सर्व प्रथम उससे
हैं - "क्या काम है?" "क्यों आए हो?" परन्तु यह द्वार हम खोलक
हैं, सब को अन्दर आने दे रहे हैं। come one come all, यह इस
का कमाल है।

साधु वास्वाणी ने हैदराबाद सिन्ध में एक सत्पुरुष की बात
थी कि एक फकीर था, वह जंगल में रहता था। प्रतिदिन भिक्षा के
निकलता था, तीन घरों में जाता था वहां से जो कुछ भी उसे मिल
कहता था यही प्रभु की इच्छा है। मुझे जो कुछ भी यहां से मिला
पर्याप्त है। कभी कभी तीनों द्वारों से उसे डांट कर भगा देते थे।
था:- "आज प्यारे प्रभु की इच्छा है कि मैं उपवास रखूं।" दुखी नही
था, क्रोधित नही होता था। किसके लिए भी कुविचार मन में नहीं
था। और सबको दुआएँ देता था, कहता था यह सब प्रभु का खे

एक दिन यह सत्पुरुष एक रास्ते से गुजरता है। एक स्त्री बा
में खड़ी है, फकीर को बुलाती है और कहती है:- "फकीर आओ,

भोजन दूँ।" फकीर भीतर जाता है, स्त्री बहुत ही स्वादिष्ट भोजन बनाकर उस फकीर को आकर देती है। फकीर की ओर देखती है, और देखती ही रहती है। फकीर बिचारा अपने झोले में अपने कमण्डल में भोजन डालता है। स्त्री उससे कहती है:- "थोड़ा समय रुको, शीघ्र ही क्यों जा रहे हो?"

फकीर सोचता है कि यह स्त्री मुझसे ऐसे क्यों बात कर ही है? वह स्त्री बार बार उसकी और देख रही थी। आखिर फकीर ने उस से कहा:- "मुझे तो जाना है, मैं यहाँ बैठकर क्या करुँगा ?" स्त्री उससे बोली, "तुम कल अवश्य आना, मैं तुम्हारे लिए खड़ी रहूँगी। फकीर आया। फकीर तो भूल गया था कि कोई स्त्री थी जिसने उसे आने के लिए कहा था। वह तो अपनी मस्ती में रहता था। उसके सभी द्वार बन्द थे। हम द्वार खोलकर उठते हैं। फिर स्मृतियाँ बहुत आती है। वह फकीर वहाँ से आकर गुजरा। स्त्री ने देखा कि वह तो जा रहा है। बुलाया :- "फकीर! फकीर! फकीर ने देखा और बोला:- "माताजी, मैं तो भूल ही गया था। कल तुमने मुझे आने के लिए कहा था, जो भी भिक्षा तुम मुझे देना चाहो, वह तुम मुझे अवश्य दो।" स्त्री भीतर गई। कल से भी अधिक स्वादिष्ट भोजन ले आई। उसने मोहन थाल (एक सिंधी मिठाई) और जलेबियाँ बनाई थी। और भी कई चीजें ले आई। फकीर आश्चर्य चकित हो रहा था कि यह स्त्री मुझसे इतना पक्षपात क्यों कर रही है? वैसे मैं जाता हूँ तो कोई मुझे धक्का देकर बाहर निकाल देता है, तो कोई कैसा बर्ताव करता है। उसने देखा कि वह स्त्री बार बार उसकी ओर देख रही थी। उस फकीर की आँखे हिरन की आंखों जैसी सुन्दर थी। किसी-किसीकी आँखे ऐसी होती हैं। फिर जब फकीर जाने लगा, तब वह स्त्री बोली, "फकीर! तुम कल अवश्य आना। मैं तुम्हारे लिए खड़ी रहूँगी।" फकीर ने सोचा कुछ गड़बड अवश्य है। दूसरे दिन नहीं आया। तीसरे दिन भी नहीं आया। चौथे दिन भी नहीं आया। फिर पाँचवे दिन आता है। उसके हाथ में लाठी है और लाठी टेकता हुआ

आ रहा है। स्त्री रोज़ इसी आशा में आकर खड़ी होती थी कि फकीर आए
अभी आएगा। अब वह दूर से देखती है कि फकीर आ रहा है। परन्तु च
में उसे कठिनाई हो रही है। ठीक तरह से चल नहीं पा रहा है। हाथ
लाठी है, जिससे टेकता हुआ आ रहा है। वह आकर उस स्त्री के घर
पास खड़ा होता है। उसके हाथ में थैला है। वह थैला उस स्त्री को
है। कहता है :- "माताजी! ये लो। तुम्हें इन आँखों से प्रेम हो गया
मै वे आँखे निकालकर इस थैले में ले आया हूँ।" अब वह सूरदास हो
था। सूरदास होना उसने स्वीकार किया। द्वार बन्द करने की यह चर्म स
है। मैं नहीं कहता हूँ कि आप भी ऐसा करें। परन्तु कम से कम अ
खोलकर मत रखिए। इस हद तक जाने वाले व्यक्ति भी हो चुके हैं।
सत्य घटना है।

अक्षर पढ़ एक, अन्य पृष्ठ सब भुला:

अंत:करण उज्ज्वल कर, अभी पन्ने पढ़ेगा कितने?

हम में से प्रत्येक को यह पाठ पढ़ना है। हम यहाँ पर किस
आए हैं? हमें यह मानुष जन्म किस लिए मिला? हम लाखों
करोड़ो रुपयों, बंगले तथा मकान और मोटर तथा गाड़ियों के पीछे
पड़े हैं। हम चाहे कुछ भी करें, परन्तु हृदय को अवश्य अज्ज्वल
है। कार्य तो यही करना है। ऐसा न हो कि हृदय वैसे का वैसा रह
जीवन में यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य हमारे लिए है जिसे भूलन
चाहिए।

दूसरा द्वार है, दो कान। कानों के द्वारा हम कितने ही पाप
हैं। अन्य दो द्वार है दो नासिकाएँ। सुगन्धित वस्तओं से कितने प
है। एक और द्वार है मुख, यह जिह्वा हम तीर छोड़े इससे भी अधि
तीर होता है इस जिह्वा का । एक बहिन मुझसे मिली, बहुत रो र

उससे पूछा:- "क्या बात है? तुम इतना क्यों रो रही हो?" बोली "अमुक क्ति ने मेरे हृदय को छलनी कर दिया है।" शरीर का घाव तो भर ता है किन्तु हृदय का घाव नहीं भरता। मनुष्य के कटु वचन घायल देते हैं। इस जिह्वा का दूसरा रूप है "स्वाद"। स्वाद के कारण देखो कितनों को घायल करते हैं। प्रतिदिन हम कितने ही मूक प्राणियों को टते हैं। ये मूक प्राणी जिन्हें जीवित रहने का वैसा ही अधिकार है जैसा और आपको है। हम अपने अधिकार तो लेते हैं, परन्तु दूसरों को धेकार नहीं देते हैं। इसके अतिरिक्त दो और द्वार

The organ of generation and the organ of evacuation.

नौ द्वार इस शरीर के हैं। इन नव द्वारों द्वारा हम प्रतिदिन पाप करते उपनिषदों में ऋषि कहते हैं :- यह गुड़िया जो प्रभु ने बनाई उसमें बैठकर ने छेद किये। ये छेद बाहर देखते रहते हैं। हमें बाहर ले जाते हैं। इंद्रियों हृदय ने अपने को बान्ध कर रखा हुआ है। इस लिए श्रीकृष्ण कहते :- "पहले द्वार बन्द करो। फिर मन को निश्चल करो। अभी तुम्हारा चंचल है। इस मन को तुम एकाग्र करो। और मन एकाग्र तब होगा तुम मन को हृदय में बिठाओगे और फिर अपने प्राणों को।" इस कारण ना ध्यान प्रयत्न करके सदैव आखों की भृकुटी में केन्द्रित करिए। देखिए संग में कीर्तन हो रहा है, परन्तु, उस समय भी हमारा मन चंचल होता कहाँ-कहाँ नहीं भटकता है। इसलिए मन को सिखाइए मन का स्थान भृकुटी के बीच में। उसे वहाँ बिठाकर नाम में उसका ध्यान केन्द्रित करिए। र वहाँ से धीरे-धीरे मस्तक की ओर ले जाइए फिर हृदय उज्ज्वल हो एगा।

"अंत:करण उज्ज्वल कर, अभी पन्ने पढ़ेगा कितने?"

सफाई करनी है, एक बालिका ने मुझसे कहा कि वह एक घर में

गई तो क्या देखती है कि उस घर की मालकिन अपने हाथ से स्न
की सफाई कर रही है। बालिका कहती है। "मैंने स्वंय से कहा:- मै
को कब साफ करुँगी?" हम में से प्रत्येक को स्वयं को साफ़ कर
सर जान वोडरो ने एक अद्भुत पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है
अर्थात "स्वंय"।

उस पुस्तक में लिखता है:- To us who are wester
cleanliness is next to Godliness, but to the Hindus, c
liness is Godliness!

ऐसा क्यों है? क्योंकि भीतर को उज्ज्वल करने पर ही हमारा
प्रयत्न है। हमारे शास्त्रों, हमारे उपनिषद गीता, गुरुवाणी का जो
बात पर है कि भीतर को उज्ज्वल करो। जिस की खोज में हम है
हम उपने साथ लेकर घूम रहें हैं। परन्तु भीतर उज्ज्वल नहीं है इस
उसका हमें अनुभव नहीं है।

एक बहिन :- हम कितना भी प्रयत्न करते हैं परन्तु फिर भ
पडते हैं।

दादा :- प्रयत्न हमारा कैसा है? उसे एक थप्पड़ मारो देखो
में चला जाता है। मैं तुम्हें निजी अनुभव से बताता हूँ। साधु वास्वाण
साथ सदैव एक लाठी रखते थे। वे कितने निर्मल , कितने पवित्र थे
पर भी वे अपने साथ लाठी रखते थे। कभी भी कोई विकार उन्हे
था तो वे दरवाजे बन्द करके अपने को दण्ड देते थे। जब उनका मन
था कि, "मैंने तोबा किया: अब मैं यह काम कभी नही करुंगा" त
देना बन्द करते थे। हमने कभी स्वंय को लाठी से पीटा है? कभी
मारा है? कभी स्वंय से कहा है कि तुम्हें भोजन नही मिलेगा, तुम
क्या हो? कभी हमने ऐसा किया है? सच्चा उपवास यही है, हम
मंगलवार आदि दिन के उपवास रखते हैं, और देखते हैं,

धिक विकार हृदय में उत्पन्न होते हैं, ऐसे उपवास से क्या लाभ?

अक्षर पढ़ एक, अन्य पृष्ठ सब भुला

अंत:करण उज्ज्वल कर, अभी पन्ने पढ़ेगा कितने?

"अन्य पृष्ठ सब भुला" दूसरे अक्षर सब भुला दीजिए। एक ही शब्द ेम" का स्मरण करिए। वह प्रेम आप प्यारे प्रभु को दीजिए। अधिका- क प्रेम आप प्रभु को दीजिए। जब यह प्रेम अन्तस्थल में उत्पन्न होता हृदय स्वत: "पवित्र होता जाता है"

(उपदेश से लिया हुआ)

कल संध्याकाल के समय जो सत्संग हुआ हमें वह विचार मिला जो र बार मैंने अपने हृदय में उच्चारित किया है:-

अक्षर पढ़ एक, अन्य पृष्ठ सब भुला

"अंत:करण उज्ज्वल कर, अभी पन्ने पढ़ेगा कितने?"

अंत:करण उज्ज्वल कर, हम कितना समय पुस्तकों को देते हैं। परन्तु तक वहां तक काम आते हैं, जहां तक वे हमें सिखाते हैं कि जिस कार्य लिए हम यहां पर आए हैं, जिस कर्तव्य के लिए हमें यह मानुषिक जन्म ला है: वह कर्तव्य है:- "अंत:करण उज्ज्वल कर" भीतर को साफ करना मैं पुस्तक पढ़ता हूँ, परन्तु यदि मैं भीतर को उज्ज्वल नहीं करता तो तक मुझ पर बोझ है।

उपनिषदों में ऋषि कहते हैं :- "वह विद्वान जो केवल पुस्तकों की द्या ग्रहण कर रहा है, परन्तु उस विद्या की साक्षी अपने जीवन द्वारा हीं देता, वह उस गधे के समान है जो चन्दन की लकड़ियों का भार अपनी ठ पर ढो रहा है, परन्तु उसे यह ज्ञान नहीं कि वह अपने ऊपर कितना ा खज़ाना ले जा रहा है।"

कितने ही विद्वान पुस्तक पढ़ते हैं, जैसे जैसे पुस्तक पढ़ते जाते हैं ा ही अभिमान से फूलते जाते हैं। पुस्तक तो हमें सिखाते हैं कि हम नम्र

बने।

"अंत:करण उज्ज्वल कर" अपने भीतर को उज्ज्वल करना है
हमारा अंत:करण उज्ज्वल होता जाता है, वैसे ही एक शुभ दिन हम
भीतर एक प्रकाश देखते हैं, नूरानी नूर देखते हैं, जिसे देखने के लि
मानुषिक देह मिली है। अपने भीतर हम दर्शन करते हैं। यह दर्शन ही
ज्ञान है। ज्ञान पुस्तकों की बात नहीं है। ज्ञान उसमें नहीं है कि मैं अ
आकर युक्तियाँ सुनाऊँ। अथवा गीत या गुरुवाणी कण्ठस्थ कर लूँ औ
आपके पास आकर वाद विवाद करूँ, झगड़ा करूँ। ज्ञान है ज्योति
है प्रकाश, जिस नूर का दीदार हमें मिलता है जब हमारा अंत:करण उ
होता है। जब पूर्ण रूप से उज्ज्वल होता है तब ज्योति प्रकाशमान
है।

अंत:करण को उज्ज्वल करने के लिए कितनी ही बातें हमारी स
करती हैं। सत्संग में आना, निष्काम भाव से सेवा करना, दान ए
करना, दुखी एवं दरिद्रों की सेवा शुश्रुषा करना, योग साधनाँए
कितनी ही साधनाएँ हमें मदद करती हैं। प्राय: हम जो इस पथ पर
हैं, उन्हें सप्ताह बीत जाते हैं, महीनों बीत जाते हैं, हमें अपने भीतर
का दर्शन नहीं मिलता, हम निराश हो जाते हैं। हम निराश न हों
प्रभु का हमसे वादा है:- "तुम्हारा कोई भी प्रयत्न व्यर्थ नहीं जात
नहीं होता। एक छोटी से छोटी और बड़े से बड़ी बात जो हम इ
में करते हैं। हमारे हृदय को उज्ज्वल करती है, एक दिन जब उ
आ जाती है तब अपने आप भीतर ज्योति का प्रकाश होता है,
निराश न हों, अपना कार्य करते रहें, अपना प्रयत्न करते रहें।
प्रयत्न तुम्हारा व्यर्थ नहीं जाता।" ऐसा श्रीकृष्ण कहता है। तुमने दे
कि कैसे नल में से एक एक बूँद पानी का टपकता रहता है, प
उस नल के नीचे बाल्टी रखेंगे तो कुछ समय पश्चात वह भर

क दिन मैंने ऐसा किया। नल में से बूँद बूँद पानी टपक रहा था। रात समय मैनें बाल्टी रख दी, सुबह उठकर देखा कि बाल्टी भर गई थी। द बूँद से हमारे प्रयत्न एकत्रित होते जाते हैं। एक शुभ दिन प्रभु की कृपा हमारा अंत:करण उज्ज्वल हो जाएगा। जब तक भीतर उज्ज्वल नहीं ता, हमें दर्शन नहीं होते। जिस दर्शन का दूसरा नाम है ज्ञान। परन्तु जब तःकरण उज्ज्वल हो जाता है, तब अपने आप हमारे भीतर ज्योति का काश होता है।

पुणे - 28-6-86

नवजीवन की राह (१)

दादा : आज का विचार

"बनी बनाई, बन रही, और कुछ बननी नांहि।

तुलसी ऐसा जानकर, मग्न रहो मन मांहि।।"

सन्त तुलसी दास जी कहते हैं:- "जो होनी है वह होकर ही र
फिर व्यर्थ में चिंता करने की क्या जरुरत है?" आप विडिओ या सि
में जो कुछ देखते हैं वह पहले से ही पूर्वयोजित है। उसमें कुछ बातें अ
पसंद नहीं होती, आप उन्हें बदल नहीं सकते। ज़्यादा से ज़्यादा आप
फाड़कर सिनेमा हाल से बाहर आ सकते हैं। परन्तु होगा वही जो
से पूर्वयोजित है।

"बनी बनाई बन रही, और कुछ बननी नांहि।

तुलसी ऐसा जानकर, मग्न रहो मन मांहि।।"

यह दोहा तुलसीदास जी का है। संत तुलसीदास जिन्होंने 'राम
मानस' लिखा है, जिसे हम तुलसी कृत रामायण भी कहते है
तुलसीदास जी कहते है:- "तुम यह सूझबूझ, ज्ञान और जानकारी
करके अपने मन में मग्न रहो।" "मग्न रहो मन मांहि।" जो कुछ
रहा है, वह अवश्य होगा ही। कुछ भी करोगे, रोओगे रड़ोगे, चिल
पर होनी को तुम टाल नहीं सकते। इस संसार में जो कुछ भी
है, वह एक दिव्य शक्ति द्वारा हो रहा है, तुम उसका सामना न
सकते। परन्तु तुम, एक बात कर सकते हो। "मग्न रहो मन मां

दो प्रकार का प्रयास मनुष्य कर सकता है। आदमी वो जो
करे। जो उद्यम नहीं करता, वह आदमी नहीं है। उद्यम दो प्रकार

एक उद्यम है सांसारिक और दूसरा है पारमार्थिक। सांसारिक बातों
त्रेषय में संत तुलसीदास जी कहते हैं:- "उद्यम करना व्यर्थ है। जो होना
ह अवश्य होगा।" इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम उद्यम न
उद्यम तो हमें करना ही है, अवश्य करेंगे। हम जो प्रकृति अपने साथ
हैं वह हमसे अवश्य कार्य कराएगी। यदि मैं चाहूँ भी कि मैं अपनी
आयु में कोई कार्य नहीं करूँ, तो यह संभव नहीं है। मेरी प्रकृति मुझे
की ओर आकृषित करेगी ही।

एक राजा के बारे में कहा गया है: वह अपना महल छोड़कर वन
ाकर रहने लगा। उसने कहा:- "मैं अपना जीवन चिंतन में व्यतीत
गा।" चिंतन के लिए भी तैयारी की आवश्यकता होती है। यदि तैयारी
है तो ध्यान में कम समय ही बैठ पायेंगे। मन भटकता रहेगा। चंचल
हमें स्थिर बैठने नहीं देगा। परन्तु राजा तो यह निश्चय करके आया
के वह महल में लौटकर नहीं जायेगा। अब क्या करे? न तो उसका
ध्यान में लग रहा था और ना ही वह महल में लौटकर जा सकता
उसने वहाँ नया महल बनवाना आरंभ किया। उसकी प्रकृति थी महल
ाने की। हमें हमारी प्रकृति खींचती है। यह प्रकृति भी नियम के अनुसार
हुई है। "बनी बनाई बन रही।" यह बनी हुई है। हमसे अवश्य कार्य
एगी। दूसरा उद्यम है परमार्थ का वह हम चाहें किनता भी कर सकते
परन्तु हमारी दशा ऐसी है कि हम सांसारिक बातों में उद्यम करने के
तत्पर रहते हैं। पसीना बहाएँगे, स्वयं को कष्ट देंगे, परन्तु जब कोई
ा कि परमार्थ का कोई उद्यम करो तो कहेंगे:- "वह तो जैसा हमारे
य में लिखा होगा। किन्तु ऐसा नहीं है। परमार्थ की राह सब के लिए
ी है। इसके लिए जो जितना उद्यम करना चाहे कर सकता है। संत
सीदासजी एक अन्य स्थान पर कहते है:- "लूटना है तो लूट ले राम
की लूट। परंतु हम कहेंगे:- "जितना भाग्य में लिखा होगा" यह उपयुक्त

नहीं।

“बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि।

तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि।।”

हम कितनी चिन्ताएँ करते हैं। प्रत्येक को कोई-न-कोई चिन्ता हुई है। यहाँ पर है कोई ऐसा जो कह सके कि उसे कोई चिन्ता नह यद्यपि ऐसा है तो फिर सर्वप्रथम मैं और सब उपस्थित सत्संगी च उसके पैर छूएँगे। हर एक इन्सान को कोई न कोई चिन्ता अवश्य है। वि गृहस्थियों को बच्चों की चिन्ताएँ, घर की चिन्ताएँ, कमाने की चि होती है।

एक स्त्री विदेश में रहती थी। उसको एक कन्या थी। ज़ो बढ़ गई। “जैसे आप जानते हैं कि कन्या जब बड़ी हो जाती है तो म को उसके विवाह की चिन्ता होती है। मुझे नहीं मालूम क्योंकि मेरी कन्या नहीं है। पर फिर भी मैं समझ सकता हूँ कि माँ-बाप को की कितनी चिन्ता होती है। पिता को बेटी की अत्याधिक चिन्ता थी। माता संत तुलसीदासजी की शिष्या थी और वह बार-बार कहती

“बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि।

तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि।।”

माँ को यह विश्वास था कि उसकी बेटी का वर पहले से है। अन्य किसी से तो उसका विवाह हो नहीं सकेगा। वह उचित पर आकर मेरी बेटी को ले जायेगा। परन्तु पिता को अत्याधिक रहती थी। अपनी पत्नी से कहता था: “तुम अपनी बेटी के लिए कु करती हो। तुम समझती नहीं हो, अपनी “बनी बनाई” चला रही ह बनाई में से प्राप्त तो कुछ भी नहीं हुआ है। बाईस वर्ष की लड़की हो गई है, तुम बम्बई जाओ, बिटिया को भी साथ लेकर

हो सकता है वहीं कुछ बात बन जाए।" तब उसकी पत्नी ने कहा:-

"बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि।
तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि।।"

अन्ततोगत्वा क्या हुआ? बिटिया चौबीस वर्ष की हो गई। उसी नगर में उसके चचेरे भाई का विवाह था। उस विवाह में यह लड़की भी गई हुई थी। फिर साधारणत: जैसे अपने रिश्तेदारों के विवाह पर जाया जाता है, वैसे उस अवसर पर बम्बई का एक लड़का था जो उस विवाह में सम्मिलित होने के लिए आया था, या फिर किसी अन्य कार्य से आया था। परन्तु वह उस विवाह में उपस्थित था। उस लड़के ने इस लड़की को देखा। विवाह चल रहा था। विवाह के दौरान उस लड़के ने, जिस लड़की का विवाह था उसके पिता से पूछा "यह लड़की कौन है? मुझे बताओ, मुझे यह लड़ की पसन्द है, मैं इससे विवाह करना चाहता हूँ।" अच्छा, खानदानी लड़का, उँचे पद वाला स्वयं उस लड़की की माँग करता है। तब पति ने पत्नी से कहा निस्सन्देह!

"बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि।
तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि।।"

एक बहन थी, जिसकी लड़की की सगाई हुई, उसका विवाह तीन-चार महीनों में होने वाला था। विवाह के लिए पच्चीस हज़ार रुपयों की आवश्यकता थी। पति बहुत ही सज्जन पुरुष था। उसको सरकारी नौकरी थी। सरकारी नौकरी वालों को तंख्वाह कोई अधिक नहीं मिलती है। यह व्यक्ति अत्यधिक ईमानदार था। रिश्वत आदि नहीं लेता था। दिन बीतते गए। पत्नी से कहा:- "तंख्वाह से तो हमारा गुज़ारा कठिनाई से होता है, अब पच्चीस हजार रुपये कहाँ से आएँगे।" तब पत्नी ने उत्तर दिया:- "आप पच्चीस हज़ार रुपयों की चिन्ता न करें। बनी बनाई बन रही अब कुछ बननी नांहि। पच्चीस हज़ार जो हमें देने हैं वे प्रभु अपने आप आकर हमें देंगे।

आप चिन्ता न करें। पति बोला:- "चिन्ता कैसे न करूँ? शादी का सम
नज़दीक आ रहा है, अब कुछ दिन बाकी रह गए हैं।" तब पत्नी ने कहा
"आप चिन्ता न करें मैंने तार भेजा है।" पति कहता है:– "किसे तार भे
है" पत्नी जवाब देती है:- "अपने पिता को तार भेजा है।" पति बोल
"तुम्हारे पिता कहाँ से आए? पाँच वर्ष पूर्व तुम्हारे पिता का देहान्त
गया था। वे तो कर्ज छोड़कर गए थे, जिसके लिए तुमने मुझसे पैसे लेक
कर्ज चुकाया था। पिताजी को तार भेजा है! पिताजी कहाँ से तुम को
भेजेंगे?" पत्नी कहती है:- "मैं उस पिता की बात नहीं कर रही। परमपि
जो हममें से एक-एक का पिता है Our heavenly father, उसे त
भेजा है, अपने आप निश्चित समय पर भेजेगा।" पति बेचारा चुप र
अपने कमरे में चला गया। अपने मन में सोचता रहा:- "मुझे नहीं मा
था कि इतनी मूर्ख पत्नी से पाला पड़ा है?" परन्तु यदि वह अपने
से यह बात कहता तो कष्ट में पड़ जाता!

अचानक पति को आफ़िस में तार मिला कि:- "तुम्हारे एक दूर
रिश्तेदार का देहान्त हो गया है। वह तुम्हारे नाम पे वसीयत में एक ल
रुपये छोड़कर गया है।" तब वह तुरंत घर दौड़ा-दौड़ा आया और प
से कहा:- "तुम्हारे पिता को अवश्य ही तुम्हारा तार मिल गया है।" अन्
उसने तो कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि एक लाख रुपये अमुक व्य
से मिलेंगे। जो भी प्रभु में विश्वास रखता है, उसका विश्वास पूर्ण
है।

"बनी बनाई बन रही, और कुछ बननी नांहि।
तुलसी ऐसा जानकर, मग्न रहो मन मांहि।।"

हमें चाहिये कि हम मग्न रहें। उस एक के ध्यान में सदैव रहें,
आनन्द आयेगा। देखिये, हम कितनी ही चिन्ताएँ करते हैं। कितनी सम
हमें हैं। पूरा समय हमारा उन समस्याओं में ही व्यतीत होता है।

ुलसीदासजी कहते है:- "हे प्रिय! तुम अपने भीतर देखो, अपने मन में ग्न रहो। तुम्हें इतना आनन्द प्राप्त होगा कि तुम्हें बाकी सब तुच्छ मालूम ोगा।" प्रभु ने समस्या खड़ी की है, इसके पहले उसका हल भी निकाल र रखा है। आप पाठशाला में बीजगणित (Algebra) एवं रेखागणित Geometry) पढ़े हैं और कॉलिज में त्रिकोण गिती (Trignometry) ढ़े हैं। उन पुस्तकों के अन्तिम तीन-चार पृष्ठों पर प्रश्नों के उत्तर दिये ुए होते हैं। एक एक समस्या का हल होना है परन्तु हम समस्याओं को धिक जटिल करते जाते हैं।

मैं छोटा बालक था। पाठशाला में पढ़ता था। मैंने बुनना (knitting) ीखा। अभी अच्छी तरह से नहीं सीखा था। एक दिन बुनना शुरू ही किया ो ऊन उलझ गई। जब मैंने उसे सुलझाने का प्रयत्न किया तो और धिक उलझती गई। आखिर ऐसी स्थिती आ गई कि मैंने देखा कि अब ात बस के बाहर है। मैं उसे सुलझा नहीं सकता। अपनी पूज्य माता से हा:- "माताजी! मुझसे यह सुलझ नहीं रही है, आपही उसे सुलझा ीजिऐ।" और मैं खेलने चला गया। एक डेढ़ घण्टे के पश्चात जब लौटा ब तक मैं भूल चुका था कि मैंने माताजी को ऊन का गोला सुलझाने े लिये दिया था। परन्तु लौटने पर क्या देखता हूँ कि माताजी ने उसे ीक ठाक करके मेज पर रख दिय था।

एक एक समस्या जिसे हम सुलझाने का प्रयत्न करते हैं, उसे हम धिक जटिल करते जाते हैं। समस्याएँ अपने आप हल हो जाएँगी। हम केवल अपने मन में मग्न रहें। एक एक समस्या आकर हमें यही सीख ेती हैं कि हम मग्न रहें फिर देखेंगे कि हमारी समस्याएँ कैसे हल हो जाती ैं।

"बनी बनाई बन रही, और कुछ बननी नांहि।
तुलसी ऐसा जानकर, मग्न रहों मन मांहि।।"

इसका अर्थ यह कदापि नहीं हैं कि उद्यम कतई नहीं करना है।
व्यक्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि पूजा घर में बैठा था और म
को आग लग गई। घर के लोग उसके पास आए और उससे कहा:- "
को आग लग रही है, उठो, हम निकल रहे हैं।" वह कहने लगा:- "न
मैंने प्रभू पर छोड़ा है और वो ही आकर मेरी रक्षा करेगा।" लोगों ने उ
कहा:- "प्रभु ही तो हमारे द्वारा तुम्हें चेतावनी दे रहा है कि तुम निकल
बोला:- "नहीं!" इतने में आग फैलती गई और पूरे मकान को घेर लि
अग्निशामक दल (Fire Brigade) को बुलाया गया। वे लम्बी सीढ़ी
आग के ऊपर से होते हुए उस व्यक्ति के पास गये और उससे कहा:- "
आओ! अब आग फैल चुकी है, यदि तुम अब भी नहीं निकलोगे तो
बाहर निकालना कठिन हो जायेगा।" वह कहने लगा:- "नहीं! मैंने तो
पर छोड़ा है।" कहा जाता है कि मकान जल गया और वह व्यक्ति
जल गया। जब वह प्रभु के पास पहुँचा तब उसने प्रभु को उलाहना
हुए कहा:- "यह तुमने क्या किया?"

इस बात में कितनी सच्चाई है मैं नहीं कह सकता। परन्तु जैसे
वैसे मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। प्रभु के पास जाकर उसने उलाहनाा देते हुए क
"यह तुमने क्या किया? मैंने तो सब कुछ तुम पर ही छोड़ा था। मैंने घर
की बात भी नहीं सुनी और न ही अग्निशामक दल वालों की बात
सब कुछ तुम पर ही छोड़ा। तुमने मेरी रक्षा तो नहीं की परन्तु सह
भी नहीं भेजी।" तब प्रभु ने उससे कहा:- "प्रिय! सहायता तो मैंने तु
पास बहुत भेजी। सर्वप्रथम तुम्हारे पास पड़ोसी भेजे, उन्होंने आकर
कहा कि तुम निकलो। परन्तु तुम नहीं निकले। फिर तुम्हारे पास घ
लोग आए फिर भी तुम नहीं निकले। मैंने अग्निशामक दल के
सीढ़ियों पर चढ़ाकर तुम्हारे पास भेजे, इससे अधिक तुम्हें कैसी सह
भेजता?"

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि हम उद्यम न करें, ऐसे ही बैठे हें। उद्यम करें, परन्तु यह विश्वास रखें कि इसका जो भी परिणाम होगा ाह हमारे भले के लिए ही होगा।

एक बहिन:- "दादाजी! उस व्यक्ति ने इतना पुकारा फिर प्रभु को कुछ तो सुनना था।"

दादा:- एक दिन एक गुरू आश्रम में अपने शिष्यों को उपदेश दे रहे ा कि सभी प्राणियों में एक ही प्रभु हैं। (The One in all the Jniversal Self) सब में एक ही आत्मा है। एक शिष्य इस शिक्षा को यान में रखते हुए रास्ते पर जा रहा था। दूर से एक मस्त हाथी आ रहा ा। हाथी पर पीलवान था। वह चिल्लाता हुआ आ रहा था:- "हाथी मस्त ", हट जाओ, हट जाओ।" परन्तु यह शिष्य सोचने लगा कि हाथी मे भी ो वो ही है। मैं क्यों दूर हट जाऊँ? मुझमें और उसमें कोई अन्तर नही ।। वह मेरे ही समान है।" हट ही नहीं रहा था। प्रभु की उसपर कृपा हुई। रना हाथी उसे कुचल डालता था। हाथी की उसे केवल सूँड लगी और ह सड़क की दूसरी ओर पर जा गिरा। उसकी कुछ हड्डियाँ ही टूटी। ोता हुआ अपने गुरू के पास आया। बोला:- "गुरुदेव! आपने शिक्षा दी क सब में एक ही प्रभु है। फिर मेरी यह दशा क्यों हुई?" गुरु ने उत्तर देया:- "प्रिय! तुम्हें पीलवान ने सावधान किया, उस पीलवान में कौन था? समें भी तो वही प्रभु था! तुम्हें उसने कहा कि हट जाओ। तुमने उसकी ात नहीं सुनी।"

उस आगवाले ने रखा तो प्रभु पर, परन्तु उसने यह नहीं सोचा कि ड़ोसी में भी प्रभु ही है, घर के लोगों में भी प्रभु ही हैं और अग्निशामक ल वालों में भी प्रभु ही है। यदि उसने प्रभु पर रखा तो प्रभु ने भी ोड़ा नहीं। वह आखिर गया प्रभुके पास ही।

बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि।

तुलसी ऐसा जानकर, मग्न रहो मन मांहि।"

मेरे प्रियजन! मग्न रहो! चिन्ताएँ त्यागो। हमारा मन अधिकां चिन्ताओं के कारण चंचल रहता है, काम की चिन्ता, बिटिया की चि बेटे की चिन्ता, मकान ही चिन्ता। एक बहन कल मुझे मिली, बोली:- करूँ? मैं अपने बच्चों के पास जाना चाहती हूँ परन्तु मकान की हैं।" तुलसीदासजी कहते हैं कि जब तुम चिन्ताएँ छोड़ोगे, तुम मग्न सकोगे।

पूज्य दादाजी (साधु वास्वाणी) बार बार कहते थे:- "केव चिन्ताएँ करो। एक चिन्ता यह कि एक एक दिन जो बीत रहा है हगें अन्तकाल के समीप ले जा रहा है। किसी समय भी काल आक दबोच लेगा। दुसरी चिन्ता यह कि काल आ रहा है और हमने कोई नहीं की। तैयारी करें। तैयारी करें! प्रतिदिन परमार्थ की तैयारी

प्रारम्भ में मैंने आपको बताया कि उद्यम दो प्रकार के हैं:- १ सां बातों का और २) पारमार्थिक बातों का। सांसारिक बातों का उद्यम व्यर्थ है। "बनी बनाई बन रही।" परन्तु परमार्थ की बातों के लिए करना आवश्यक हैं। प्रात:काल हम उठते हैं, संभवत: हममें से कोई उठते होंगे, कोई 8 बजे कोई 6 बजे। जितने बजे भी उठते हों, हम करलें कि आज से हम 15 मिनट शीघ्र उठेंगे। केवल 15 मिनट शीघ्र क नहीं। 15 मिनट शीघ्र उठकर कहें "प्रभु, ये 15 मिनट हम तुम्हारे में बैठेंगे। आज तुम्हारी कृपा से पौने छ: बजे उठे हैं। ये 15 मिनट ज मिले हैं, हम परमार्थ की तैयारी करेंगे। आपको चाहिए कि किसी नाम का बार बार उच्चारण करें। दूसरी सब बातें भुलाकर, सब भुलाकर, अपने मन में से भय निकालकर, मौन बैठकर अपने अपने महबूब का ध्यान मन में रखकर, प्यार से महुब्बत से प्रेम से, से, हृदय की गहराई से उच्चारण करिए। चिन्ता का त्याग कर

करिए। यदि नाम में मन नहीं लगे तो किसी न किसी सत्पुरुष या प्रभु के प्यारे या गुरु के जीवन में से किसी घटना को लेकर बार बार हृदय में उसका ध्यान करिए। "यह मेरे प्रियतम, यह मेरे प्रिय, कितने क्षमाशील हैं, कितने दयालु हैं, कितना उनका मुख शान्तिमय है। कुछ भी हो जाए, उनके हृदय की शान्ति कभी नहीं टूटती। मेरे मन की यह दशा कब होगी? मैं छोटी बड़ी बात पर विचलित हो जाता हूँ, जोश में आ जाता हूँ, गुस्से में आ जाता हूँ।" जैसे जैसे हम ध्यान करेंगे, हमारे जीवन मे नया रंग आ जायेगा। हम नये बन जायेंगे। एक बार यदि हमें १५ मिनटो में आनंद आ गया तो फिर उस समय को बढ़ाते जायेंगे। १५ मिनटों से आधा घण्टा, पौना घण्टा और फिर एक घण्टा। परन्तु आज से ही प्रारंभ कर दें। आज से ही कहे:- "15 मिनट प्रभु को अवश्य देंगे।"

एक बहिन :- दादाजी, किसी दिन, किसी कारणवश, शरीर के कारण अथवा किसी कारणवश न बैठ सकें तो फिर?

दादा :- यदि ऐसा हो तो दूसरे दिन आप ज़्यादा समय बैठकर पिछले दिन की पूर्ति कर लिजिए।

बहिन :- दादाजी, नाम का जाप करने और स्मरण करने में क्या अन्तर है?

दादा :- नाम का जाप करने और स्मरण करने में विशेषत: कोई अन्तर नहीं हैं। कुछ गुरु शिक्षा देते हैं कि नाम किसी विशेष पद्धति से लेना चाहिए। और कुछ गुरु शिक्षा देते हैं कि अपना ध्यान भृकुटि के बीच और थोड़ा अन्दर केन्द्रित करके बैठकर नाम का जाप करें। इसे वे स्मरण कहतें हैं। जाप नहीं कहते। परन्तु जाप और स्मरण में बुन्यादी तौर पर कोई भी अन्तर नहीं हैं।

एक बहिन :- और जाप क्या है?

दादा :- जाप भी यही है। जाप में कोई प्रतिबंध नहीं है। प्रेममय

हृदय से जाप करना है। जाप है जैसे मैंने आपसे बात की, कि हमारे कॉ
में मेरे साथ एक विद्यार्थी था। परीक्षा में उसका परीक्षाफल बहुत
खराब आता था। एक दिन मैं उसके पास जा बैठा। उस दिन आने मे
हो गई, इसलिए मैं उसके पास पीछे की बैंच पर जा बैठा। क्या देख
वह कापी में कुछ लिखता जा रहा था। लिखना बंद ही नहीं कर रहा
मैं बोला:- "इसके लिए तो बोला जाता है कि वह ध्यान ही नहीं
प्रोफ़ेसर लेक्चर देता है और वह परीक्षा में असफल हो जाता है।
प्रतीत होता है कि बेचारा एक एक शब्द लिख रहा है।" मैंने जैसे
तो क्या देखता हूँ कि वह केवल एक ही शब्द लिख रहा है। "मैंना" "
"मैंना"! मैंने उससे पूछा:- "यह क्या है? मैंना मैंना?" बोला:- "अ
लड़की से मुझे प्रेम हो गया है।" देखा जाय तो वह भृकुटि के बीच
हृदय में ध्यान केन्द्रित नहीं कर रहा था। परन्तु उसके जाप करने क
तरीका था। यदि मैं इतने प्रेम से प्रभु के नाम का जाप करूँ तो न
किस मंजिल पर पहुँच जाऊँ।

उसे कोई ध्यान नहीं था। उसका यह नाम के जप करने का
था। उसका लिखना भी मैंना, विचार करना भी मैंना और ध्यान
भी मैंना। मैंने उससे कहा, "यह पाठ मुझे भी सिखाओ मैं ना!
मैं भी कुछ नहीं अर्थात शून्य हो जाऊँ। मेरे प्रभु। मैं कुछ भी नहीं हूँ
एक तू ही है।" यदि हम यह पाठ सीख लें तो फिर क्या चाहि

बनी बनाई, बन रही, और कुछ बननी नांहि।
तुलसी ऐसा जानकर, मग्न रहो मन मांहि।।

हम कितनी ही बातों से चिपक जाते हैं। जैसे कि स्मरण अ
में क्या अन्तर है, और इन बातों में उलझकर हम अपना जीवन
गंवा रहे हैं। और दिव्य देन जो हमें प्राप्त हो सकती है उनमें रुका
रहे हैं।

एक बहिन के सम्बन्ध में पढ रहा था। वह आठ वर्ष अस्वस्थ रही
ग भी भयंकर था। बिस्तर पर लेटी रहती थी। हिल भी नहीं सकती
।दूसरों पर आधारित थी। सब प्रार्थनाएँ की :- "प्रभु! रोग से मुक्ति दो
कि मैं अपने आप चल फिर सकूँ। अन्यथा मुझे अपने पास बुला लो। यदि
ो जीवित रखना है तो मुझे दूसरों पर आधारित न रखो।" किसी भी
र्थना का प्रभाव नहीं हुआ। फिर यह बहिन कहती है:- "एक दिन मुझे
चार आया कि आठ वर्ष मैंने पुकारा है। ऐसा तो नहीं है कि मैं अपनी
छा प्रभु पर थोप रही हूँ? क्यों न मैं प्रभु की इच्छा स्वीकार करूँ? मैं
ं अपने आप को उसे अर्पित कर दूँ और जो भी वह चाहे मैं उसे स्वीकार
ँ।" कहती है:- "मैं यह प्रार्थना करती हूँ कि "प्रभु! मैं अब तुमसे कुछ
नहीं माँगूंगी। मैंने सब कुछ तुम्हारे चरणों में अर्पित कर दिया है। जैसे
तुम चाहो वैसे करो!" दो सप्ताहों के भीतर आठ वर्षो का रोग दूर
गया और वह चलने फिरने लगी।

प्रार्थनाओं के कितने ही नमूने हैं। उनमें से एक प्रार्थना यह:- "The
ayer of surrender." "स्वयं को, प्रभु के हाथों में सौप दें।"

बनी बनाई, बन रही, और कुछ बननी नाहिं।
तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि।।

जीवन में कितनी ही समस्याएँ आती हैं। विशेषत: आप में से जो
ार में हैं। उस समय मन कैसे बेचैन होकर भटकने लगता हैं। यदि
यह विश्वास हो जाय कि "बनी बनाई बन रही" तो फिर चिन्ता नहीं
। जो होनी है वह अवश्य होगी। उसमें ही मेरा भला हैं।

जॉन बनीयन Pilgrim Progress पुस्तक के लेखक को अकारण
गार में डाल दिया गया। उसका कोई भी दोष नहीं था। बहुत ही प्रयत्न
, चिल्लाया, परन्तु उसकी किस ने भी नहीं सुनी। कारागार में पड़
। उसने देखा अब उसकी कोई भी नहीं सुन रहा है। अपना ध्यान प्रभु

के चरणों में लगाया। कहता है:- "उस ध्यान के कारण मैं एक पुस्तक सका Pilgrim Progress. इस पुस्तक का अनुवाद कई भाषाओं में गया है। न जाने कितनी प्रतियाँ इस पुस्तक की छप चुकी हैं। बारह के पश्चात उसे कारागार से निकाला गया। वह यह पुस्तक लेकर आया। कहता है:- "यदि मुझे कारागार में नहीं भेजा जाता था, त पुस्तक तैयार नहीं हो सकती थी।" वह एक ठठेरा था, पुस्तक कैसे पाता।

जो कुछ भी होता है, प्रभु को उसका ज्ञान है। उसने वही जिसमें हमारा भला है। फिर हम क्यों बैठकर उपने भले के साथ प्रभु भला करना चाहे और हम बैठकर झगड़ा करें। उससे कहें:- "इ न करो, उस तरह करो।" ये दो बाते यदि हमारे हृदय में बैठ फिर हमारा जीवन ही नया हो जाय। एक बात:-

बनी बनाई, बन रही, और कुछ बननी नांहि।
तुलसी ऐसा जानकर, मग्न रही मन मांहि।।

और दूसरी बात :-

जो तुधु भावइ साई भली कार,
तू सदा सलामत निरंकार!

जो कुछ भी प्रभु! तुम कर रहे हो उस में ही मेरा भला है ही ऐसी बातें होती हैं जो समझ में नहीं आती परन्तु उनमें ही भला अवश्य देखें। अचानक हमारे प्रियजन हमसे बिछुड़ जाते कोई रोग लग जाता है, हमें काई हानि हो जाती है, ऐसा ल आपदा आ पड़ी है। परन्तु नहीं, प्रभु! तुम्हारे हाथों से आई ओर से जो भी आया, वह मीठा। इसमें ही मेरी भलाई है।

(पुणे - 1

नवजीवन की राह पर (२)

ा : इससे पहले का विचार आपको याद है?

संगी: "बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि।

तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि।।"

पिछले दो सप्ताहों में मुझे कुछ बन्धु मिले हैं जो कहते है कि यदि नी बनाई बन रही" तो फिर हम परिश्रम क्यों करें क्यों न जाकर सो एं? मैंने उनसे कहा:- "तुम सो जाओ यदि सन्त तुलसीदास ऐसा कहें:-

बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि।

तुलसी ऐसा जानकर, बिस्तर पर सो जाओ।।

तुलसीदास ऐसा नहीं कहते कि बिस्तर पर जाकर सो जाओ। सीदासजी कहते हैं:- "मग्न रहो मन मांहि।" उस एक के ही ध्यान में समय बिताओ।

उस एक के ध्यान में रहना सरल बात नहीं है। बिस्तर पर लेट कर आप नाम उच्चारण का प्रयत्न करेंगे तो आपकों निद्रा देवी अपनी में ले लेगी। वैसे आपको नींद नहीं आएगी। सन्त तुलसीदास जी कहते "मग्न रहो मन मांहि" इस मग्न रहने के लिए यह आवश्यक है कि जो भी कर्त्तव्य हैं उनका पालन करूँ। जब मैं अपना कर्त्तव्य और कार्य क्षमता से करता हूँ, इस पर भी यदि परिणाम मेरी इच्छा के विपरीत लता है तो उस समय इस सूत्र का स्मरण करूँ:-

"बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि।

तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि।।"

मेरे प्रिय! आप सुबह से रात तक परिश्रम कर रहे हैं, फिर भी अगर

आपकी इच्छानुसार परिणाम नहीं निकला तब भी आपको निराश नहीं
चाहिए। ऐसी परिस्थिति में तुलसीदासजी के इस दोहे को याद करें

"बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि
तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि"

आप सोना चाहते हैं परन्तु सो नहीं सकेंगे। श्रीकृष्ण से अर्जुन में कहता है, मैं इस धोर कर्म में नहीं पडूँगा। मैं युद्ध नहीं करूँगा। मैं त में जाकर सन्यासी का जीवन व्यतीत करूँगा। श्रीकृष्ण उससे कहत तुम ऐसा कर नहीं सकोगे क्योंकि तुम क्षत्रिय हो और तुम्हारा कर्म करना और तुम्हें तुम्हारा स्वभाव उस ओर ले ही जाएगा।

प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ अपनी अपनी भावी लेकर आता भावी ही हमसे हर कार्य करवाती है। कर्मयोगी वही है जो फल की के बिना काम करता है, जो यह कहें:- "प्रभु! यह कार्य मैं तुम्हारे में अर्पण करता हूँ।" हमारी यह भावना है ही नहीं! हम जो भी का हैं, उसमें लाभ की आशा अवश्य करते है। दुकान पर जाकर कार्यालय खोलने हैं और चाहते हैं कि व्यापार चले। कॉलिज् मे पढ़ाते हैं और चाहते हैं कि मेरे पढ़ाने की प्रशंसा हो। प्रत्येक कार्य हृदय में किसी न किसी फल की इच्छा रहती है। सन्त तुलसीदास हैं कि जब तुम्हारी कोई इच्छापूर्ण न हो तब तुम याद करो:-

"बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि
तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि"

मेरा कोई प्रिय बीमार पड़ जाता है, मैं कहूँ:- "बनी बनाई क्यों बैठकर डाक्टरों की फी व्यर्थ में खर्च करूँ? नहीं! वस्तुत चाहिए कि मैं कहूँ कि:- मैं एक डॉक्टर नहीं, दस डाक्टरों को मुझसे जो बन पड़ेगा मैं करूँगा। किन्तु मेरे बहुत परिश्रम करने

यदि मेरा प्रियजन नहीं बच पाता तो फिर उस समय मैं कहूँ:-

"बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि
तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि"

कॉलिज् की एक बालिका थी, बहुत ही बुद्धिमान थी। परीक्षा दी। रेणाम निकला। वह फेल हो गई। वह रोने लगी, रोना वंद ही नहीं कर ो थी। कहती है:- "मैं कभी भी असफल नहीं हुई हूँ। मैं सदैव प्रथम गी में आती हूँ। इस बार मैं कैसे असफल रही?" कुछ दिन तो उसे ऐसी ाग की वृत्ति मन में उत्पन्न हुई और कहने लगी कि "अब दोबारा नहीं गी। मैं असफल रही, मैं अब और अभ्यास नहीं करूँगी।" उसने बेशक रिश्रम किया। जितना भी परिश्रम वह कर सकती थी उतना परिश्रम उसने या।

"बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि
तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि"

परन्तु ऐसा होना निश्चित था। परिश्रम करने पर भी उसे असफल ा पड़ा। उसे अब यह केवल स्वीकार करना शेष था। इसलिए हमें दो तें याद रखनी चाहिए:-

"बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि
तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि"

और दूसरी:-

"जो तुध भावै साई भलीकार; तू सदा सलामत निरंकार।

ये दोनों बातें यदि साथ-साथ चलती रहें तो आप बहुत ही आनंद रहेंगे। तनाव से छूट जायेंगे। हम कितनी ही बातें चाहते हैं कि हों, ानदारी से प्रयत्न भी करते हैं। प्यारे प्रभु की प्रार्थनाएँ भी करते हैं, मन्दिरों भी जाते है। नारियल और फूल आदि भी चढ़ाते हैं, सब कुछ करते

हैं। इतना करने पर भी यदि जो हम चाहते है वह नहीं होता तब
ही माने:-

जो तुधु भावे साई भलीकार, तू सदा सलामत निरंकार।

मेरे प्रभु। तुम्हें सब ज्ञात है कि मेरा भला किस में है और य
परिश्रम का फल मुझे नही मिला है तो फिर अवश्य ही इसमें मेर
होगा। मैं स्वीकार करता हूँ। प्रिय दादाजी (साधु वास्वाणी) बार बा
थे:- "स्वीकार करो! स्वीकार करो! जो कुछ भी घटित हो, कहो: स्व
I accept! I accept!

कुछ दिन पूर्व मैंने आपको गुरुदेव रानाडे की बात बताई
आधुनिक समय के बहुत बड़े सत्पुरुष माने जाते हैं। बहुत ही ती
के विद्यार्थी थे। गाँव की किसी पाठशाला में मॅट्रिक की कक्षा में
परन्तु फिर भी बम्बई विश्व विद्यालय के matriculation परी
दूसरे स्थान पर रहे। संस्कृत विषय में सर्वप्रथम आये। "जगन्नाथ
पुरस्कार" उन्हें मिला, जिसके फलस्वरूप वे अधिक विद्याग्रहण

उनके माता पिता धनी नहीं थे। पुणे के डेक्कन कॉलिज्
शिक्षा ग्रहण की। बी.ए. की परीक्षा के लिए तैयारी की। उन्हें यह
था कि वे सर्वप्रथम अवश्य आएँगे और उन्हें सरकारी छात्रवृत्ति प्र
और वे I.C.S. परीक्षा के लिए जाएँगे। ऐसे स्वप्न उनके मन

इसी बीच वे एक सत्पुरुष के सम्पर्क में आए। सत्पुरुष
का जाप करने के लिए कहते हैं। तब रानाडेजी पूछते हैं:- य
का जाप करूँ तो क्या मैं प्रथम स्थान प्राप्त कर लूँगा? सत्पुरुष
हैं:- "तुम प्रथम स्थान प्राप्त करोगे पहले तुम नाम का जाप
तब रानाडे कहते हैं:- "लालचवश मैंने नाम का जाप किया, वै
जाप करने में मेरी कोई रुचि नहीं थी। यदि नाम जपने से मुझे
मिल सकता है तो क्यों न नाम का जाप करूँ बी. ए. की परी

ुत परिश्रम किया, बहुत तैयारी की। सब को विश्वास था कि वे प्रथम ान प्राप्त करेंगे। प्रथम स्थान तो क्या, प्रथम श्रेणी में भी नहीं आ सके। रेणाम निकला द्वितीय श्रेणी ही प्राप्त हुई। वे कुछ समय तो दु:खी रहने गे। उनकी अन्तरात्मा ने उनसे कहा:- तुम दु:ख किस बात का कर रहे ? तुम्हारे गुरु का उपदेश तो यही है कि जो कुछ भी होता है उसमें भु का कोई रहस्य अवश्य होता है। प्रभु तुमसे अधिक जानता है कि तुम्हारा ला किस बात में है।

आगे रानाडे जी कहते हैं :- "कितने ही वर्षों के पश्चात् जब मैं ाध्यात्मिक पथ पर अधिकाधिक चलने लगा था तब मैंने प्रभु से कहा प्रभु! तुम्हारा कृतज्ञ हूँ जो तुमने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी। यदि तुम मुझे बी.ए. ी परीक्षा में प्रथम स्थान देते तो मैं I. C. S. होकर कहीं कलेक्टर बन ठा होता। परन्तु अब तुमने मुझे अपनी सेवा में रखा है। मैं तुम्हारा बहुत तज्ञ हूँ।" हम में से प्रत्येक के लिए प्रभु के पास अपनी योजना है। ऐसा हीं है कि केवल गुरुदेव रानाडे के लिए ही योजना थी।

विदेश में एक सत्पुरुष हो चुके हैं, उनका नाम डीन इंगे (Dean ıge) था। पश्चिमी देश के थे। बहुत ही धनी थे। यह सत्पुरुष प्रभु से हते हैं:- "प्रभु! तुमने मुझे इतने वर्ष जीवित रखा है। मैं देख रहा हूँ क मैं तुम्हारा अत्यधिक कृतज्ञा हूँ जो तुमने मेरी बहुत सी प्रार्थनाएँ नही नी, सुनते तो न जाने मेरी क्या दशा होतीं।"

सुक्रांत के शिष्य प्लैटो, जिसने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से क पुस्तक Republic, बहुत ही विचित्र पुस्तक है। प्लैटो बार-बार यह ार्थना करते थे कि "हे प्रभु! मुझे वही देना जो मेरे हित में हो चाहे वह तुमसे न भी माँगू। और जिसमें मेरा अहित हो वह मुझे मत देना, चाहे उसके लि प्रार्थना भी करूँ"

एक बहिन:- दादाजी! हमें कैसे पता चले कि हमें क्या माँगना

चाहिए?

दादा :- यही बात तो हमें समझनी है। इसलिए हमें प्रभु से
चाहिए:- "तुम्हें तो सब कुछ ज्ञात है, मुझे कुछ भी मालूम नहीं। मेरा
भार तुम पर ही है।"

बहिन:- पर हम तो बार बार माँगते ही रहते है।

दादा :- अवश्य माँगो, परन्तु उससे कहो कि यदि मेरी भल
लिए समझते हो तो देना, क्यों कि मुझे तो मालूम नहीं कि मेरी
किस में है।

बहिन:- फिर तो माँगना ही बंद कर देना चाहिए।

दादा :- यह अवस्था बाद में आती है। जब मुनष्य माँगना
देंता है। क्योंकि उसे यह ज्ञात हो जाता है कि प्रभु मेरी आवश्यकता
होने से पूर्व ही उसे पूर्ण कर देगा।

एक बहिन :- दादाजी हम प्रार्थना करते रहें?

दादा :- अवश्य करती रहो। यदि नहीं करोगी तो न जाने
क्या हालत होगी। जितनी बार हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं उ
बार हम प्रभु का विचार करते हैं। उतना ही प्रभु के समीप होते
जिस जिस बात का हम अधिक से अधिक विचार करते हैं, हम उस
होते जाते है। तुम प्रार्थना करती रहो:-

"बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि
तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि"

और दूसरी बात यह:-

"जो तुध भावे साई भली कार:
तु सदा सलामत निरंकार!"

प्रभु! मुझे तो यह भी ज्ञात नहीं कि मेरा अगला कदम क्या होगा। ़ व्यक्ति ने अपनी पत्नी से कहा: "मुझे चाय लाकर दो। मैं पीकर फिर फिस जाऊँगा।" पत्नी चाय बनाने के लिए जाती है। बनाकर चाय का ला लाती है तो देखती है कि पति के प्राण हैं ही नहीं। उस व्यक्ति को मालूम नहीं था कि जब तक चाय का प्याला आएगा, तब तक उसके ग निकल चुके होंगे। हमें पता नहीं है कि आनेवाले पल में क्या होने ला है।

हर व्यक्ति के लिए केवल यह एक बात निश्चित है कि वह जो श्वास दर ले रहा है वह बाहर अवश्य निकालेगा। परन्तु दूसरा श्वास न जाने पाएगा या नहीं। जब अंतिम श्वास आएगा तब एक और श्वास ले पाएगा थवा नहीं। इस कारण हम प्रभु से कहें:- "प्रभु तुम्हें सब कुछ ज्ञान है। ने वही दो जिसमें मेरी भलाई है।" और प्रभु के पास हममें से प्रत्येक लिए योजना है।

एक बन्धु:- "दादाजी! परमात्मा जब हमें संसार के माता पिता से खों बार अधिक प्रेम करता है, तो फिर संसार में इतना अधिक दु:ख ों है?"

दादा :- तुम्हारी यह बात बिलकुल ठीक है। यह बात एक नाई ने क सत्पुरुष से पूछी थी। दोनो नगर की ओर साथ-साथ जा रहे थे। एक ती से आकर गुज़रे जहाँ बड़ी गंदगी थी। लोग भूखे प्यासे एक दूसरे से ड़ रहे थे। एक दूसरे को गलियाँ दे रहे थे। तब उस नाई ने सत्पुरुष से हा: "आप कहते हैं कि ईश्वर दलायु है, प्रभु कृपालू है, प्रभु करुणामय आपका प्रभु कहाँ है? प्रभु के होते हुए इन लोगों की यह दशा क्यों ई है?"

सत्पुरुष ने उत्तर नहीं दिया। कितनी ही बार सत्पुरुष हमें तत्काल तर नहीं देते हैं। सुनते सब हैं। भले ही आप अत्यधिक धीमें स्तर में उनसे

कहें तब भी वे सुनते हैं, परन्तु वे उत्तर दें अथवा नहीं यह उनकी
है। आप वही बात कितनी ही बार दुहराते हैं, परन्तु वे उत्तर न
हैं।

यह सत्पुरुष भी मौन रहा। थोड़ा सा आगे चले। नगर के उ
में आए जहाँ कुछ लोग बैठे थे, जिनके बाल अच्छी तरह से कटे हु
थे। दाढ़ी एक ओर कटी हुई थी तो दूसरी ओर नहीं। मूँछें एक ओ
हुई थी तो दूसरी ओर नहीं। तब उस नाई से सत्पुरुष ने कहा: "अ
भैय्या! तुम कहाँ गए हो? तुम्हारी यह कैसी दशा है? तुम जीवित
नाई बोला "जी हाँ स्वामी! मैं जीवित हूँ। आपके साथ चल रहा हूँ।"
बोले:- "फिर इन लोगों की यह दशा कैसे हुई है? मूँछें देखो तो ए
से कटी हुई है दूसरी ओर से नहीं। बाल भी एक ओर से कटे हुए
दूसरी ओर से बढ़े हुए हैं। तुम्हारे होते हुए भी इनकी यह दशा
बोला "स्वामी! आप मुझे कैसे कहते हैं? ये लोग तो मेरे पास
नहीं हैं। वे यदि मेरे पास मेरी सलून मे आएं और मैं इन्हें इए
रहने दूँ तो फिर मैं दोषी हूँ। ये लोग मेरे पास आए ही नहीं हैं।"
ने नाई से कहा: "अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं तुमने ही दे दिया।
के लोग प्रभु के पास आए ही नहीं हैं, तो फिर प्रभु क्या करें। प्रभु
जाएं तो फिर प्रभु इनकी सुनें।"

हम में से कितने ही नास्तिक हैं। हम "प्रभु" तो कहते
हमारा प्रभु में विश्वास नहीं है। यदि हमारा प्रभु में विश्वास है
इसकी परिक्षा यह है कि हम प्रभु की इच्छा स्वीकार करेंगे। मुझे ब
कि आप में से कितने हैं जो प्रभु की इच्छा स्वीकार करने के लि
हैं? केवल उतने ही प्रभु के पास गए हैं, अधिक नहीं। और ज
पास गए हैं, वे प्रतिदिन अपने जीवन में विचित्र चमत्कार देख

प्रभु प्रत्येक को प्रेम करता है। और कितने ही उपहार ह

परन्तु हमने अपने और प्रभु के बीच में एक दीवार खड़ी कर दी है। ाहार हमें पहुँचते ही नहीं हैं। हमें चाहिए कि हम अपना जीवन प्रभु की ‍छा से बाँध दें, प्रभु के नियम से चलें। हम में से कितने प्रभु के नियमानुसार ‍ते हैं? हम स्वयं से पूछें:- "क्या प्रभु के नियम से मैंने अपना जीवन ड़ा है? कितनी बार मैंने आज झूठ बोला? कितनी बार मेरी इच्छा हुई ; मैं जाकर रिश्वत दूँ या रिश्वत लूँ? कितनी बार मैंने दूसरे के धन बुरी नज़र डाली है? कितनी बार मैंने दूसरों की ओर अपवित्र नज़र देखा?"

शापनहर एक बहुत बड़ा जर्मन फिलासफर था। अन्तिम समय में से बहुत शारीरिक पीड़ा थी। डॉक्टर उसके पास आया और देखा कि उसके ख से ये शब्द निकल रहे थे, "प्रभु मेरी रक्षा करो! मेरी रक्षा करो!" ब डॉक्टर ने आश्चर्यचकित होकर पूछा: "क्या आप के दर्शन में प्रभु का ोई स्थान है?" शामनहर को नास्तिक दर्शन का दार्शनिक माना जाता ा। तब उन्होंने उत्तर दिया: "जब दुख आता है, शरीर में कष्ट होता है, स समय अपने आप हमारे विचार प्रभु की ओर जाते हैं। अन्य किसी ओर ाते ही नहीं।"

जब अन्तकाल समीप आता है, उस समय हम विचलित हो जाते कि किसकी ओर देखें। उस समय अपने आप हमारे विचार प्रभु की ओर ाते हैं। फिर आप उसे प्रभु कहें अथवा अन्य किसी नाम से पुकारें। अपने ाप भीतर से आवाज़ उठती है:- "प्रभु! तुम्हारे अतिरिक्त मेरा अन्य कोई हारा नहीं है!" यह आवाज़ साक्षी है कि हमारा प्रभु में विश्वास है।

हम साधारण लोग प्रभु का नाम लेते हैं परन्तु हम हैं नास्तिक। क्योंकि मारा जीवन प्रभु की साक्षी नहीं देता। प्रभु कहता है:- "तुम मेरे नाम ा जाप चाहे न करो, किन्तु तुम्हारे जीवन द्वारा मेरी साक्षी मिलनी ाहिए।" आज हम जिस आर्थिक ढाँचे (economic order) में रहते हैं

वह प्रभु को नकारता है। प्रभु का सर्वप्रथम नियम है: "बाँटो और सुख
हम प्रभु की देन को बाँटते नहीं हैं। सचमुच, जैसे श्रीमद भगवत
में कहा गया है- "जो केवल अपने लिए और अपनों के लिए पक
वह तो चोर है।" इसलिए हम होठों से तो ईश्वर का नाम लेते हैं,
हम जीवन द्वारा उसकी साक्षी नहीं देते। हम वस्तुतः नास्तिक है

एक बहिन : दादाजी! ऐसा क्यों होता है थोड़ी सी खुशी मनु
मिलती है और वह प्रभु को भुला बैठता है? और यदि थोड़ा दुख उ
होता है तो फिर शाघ्र ही प्रभु का नाम स्मरण हो आता है?

दादा : इसी कारण कितने ही लोग दुख को माँगकर लेते हैं।
जब कुन्ती से कहते हैं कि, "तुम वरदान माँगो। तुम जो भी माँ
तुम्हें दूँगा।" तब कुन्ती कहती है:- "कृष्ण! मैं तुमसे केवल एक बात
हूँ। मुझे प्रतिदिन थोड़ा दुख देते रहना ताकि मैं तुम्हारा स्मरण कर
यदि मुझे कुछ दुख नहीं है तो फिर मैं तुम्हारा स्मरण नहीं कर प
तुम्हें भुला बैठती हूँ। अच्छा है कि मुझे दुख हो और स्मरण हो
इसके कि मुझे खुशी हो और मेरा हृदय वीरान हो।" इसी कारण
रचना हुई है। दुख हमें खींचकर ले जाता है प्यारे प्रभु के कमल
में फिर हमारे हृदय से पुकार उठती है:-

"जो तुधु भावै, साई भली कार:
तू सदा सलामत निरंकार।"

अच्छा हो कि इन दो बातों को हम अपने जीवन में पक

१) बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि,
तुलसी ऐसा जानकर, मग्न रहो मन मांहि।

२) जो तुधु भावै साई भली कार:
तू सदा सलामत निरंकार।

यहुदियों के पवित्र शास्त्र में रबाइ अतीबा के सम्बन्ध में एक बहुत रोचक बात लिखी हुई है। यह सत्पुरुष यात्रा पर निकला था। अपने थ उसने एक गधा, एक मुर्गा और एक बत्ती (lamp) ली। एक गाँव गुज़रा तो रात हो गई। बोला:- "मुझे यदि कोई रात्रि के लिए आश्रय तो प्रात:काल मैं पुन: अपनी यात्रा आरम्भ करूँगा।" उस गाँव में किसी भी उसके लिए द्वार नहीं खोला। उससे कहा:- "हमारे पास स्थान नहीं जो हम तुम्हें दे सकें।"

वह बोला: "प्रभु इसमें भी मेरी भलाई होगी। नहीं तो मुझे कोई तो श्य आश्रय देता। तुम नहीं चाहते कि मैं यहाँ रहूँ।" पास ही एक जंगल। रात वहाँ जाकर रहा। उस समय तूफान आया। उसकी बत्ती बुझ गई। चारा अंधेरे में था। इस बीच एक सियार आया और उसके मुर्गे को खा गा। और किसी चीते अथवा शेर ने उसके गधे को खा लिया। सुबह उठकर नने देखा तो ना ही गधा है, और न ही मुर्गा और न ही बत्ती। वह उसी व में वापस गया। बोला:- "जो कुछ भी मेरे पास था वह तो गया। अब डूँ संभवत: गाँव में कोई रोटी का टुकड़ा दे दे।" गाँव में जाकर देखता कि सब कुछ समाप्त! रात्रि के समय कुछ डाकू वहाँ पर आए थे। गाँव सब लोगों को मार डाला था। उनके घर लूटकर सब सामान ले गए। उस ने सोचा:- "प्रभु! रात तुमने मुझे यहाँ रहने के लिए आश्रय नहीं या। इसमें संभवत: तुम्हारा रहस्य था। अन्यथा मेरा भी सफाया हो गया ता। तुमने मेरी बत्ती भी बुझा दी। यदि बत्ती जलती होती और डाकू हाँ से गुजरते और मुझे देखते तो फिर वे मुझे भी मार डालते थे। तुमने रे गधे को भी उठा लिया। नहीं तो वह कोई आवाज़ करता तो डाकुओं पता चल जाता। मेरे मुर्गे को भी तुमने उठा लिया। वह होता तो फिर सकता है कि डाकुओं को पता लग जाता। प्रभु! शुक्रिया!"

जिस घटना का वर्णन मैं अभी आप से करने जा रहा हूँ वह सत्य टना है। १९४७ में हम कराची में थे। हमारा एक सत्संगी मोटर-सायकल

पर जा रहा था। किसीने पीछे से आकर उसे टक्कर मार दिया। दुर्घटना हो गई। बिचारे को एक आँख खोनी पड़ी। उसे अस्पताल ले गए। वहाँ उसे कुछ लोग देखने गये। कहने लगे:- "इस बिचारे को कितना दुख होगा।" परन्तु उसे दुख नहीं था। लोगोंने देखा वह मुस्करा रहा था। लोग उससे कहने लगे:- अरे! तुमने अपनी एक आँख गँवाई है और तुम मुस्करा रहे हो?" वह बोला:- "आँख तो अवश्य गई है, परन्तु प्रभु को संभवंत: ज्ञात था कि मेरी एक आँख जाने वाली है। उसने मुझे दो आखें दे दी थी। इस दूसरी आँख से भी मैं उतना ही देख सकता हूँ जितना मैं वैसे दोनों आँखों से देख सकता था।"

एक बहिन:- दादाजी! परन्तु कितने ही अवसरों पर मनुष्य अधिक दुख मिलने पर नास्तिक भी हो जाता है।

दादा :- निसंदेह! उसे उस अनुभव से गुज़रना है। इसमें भी कोई रहस्य है। यदि किसी व्यक्ति को दुख मिलता है और वह नास्तिक हो जाता है, तब ऐसी स्थिति में भी कहना चाहिए:-

"जो तुधु भावै सोई भली कार,

तू सदा सलामत निरंकार!

प्रभु! इसमें भी तुम उसका भला चाहते हो। तुम बालक से क्या कम प्रेम करते हो? मैं कितना ही अधिक उसे प्यार करती हूँ, इससे न जाने कितनी बार अधिक तुम उसे चाहते हो। इसपर भी तुमने उसकी यह दशा की है। इसमें भी कोई भला होगा।"

परन्तु हम एक तरफ अपने प्रियजन से कहते हैं कि तुम्हें नास्तिक नहीं होना चाहिए और दूसरी ओर हम प्रभु से शिकायत करते हैं कि यह तुमने क्या किया। इससे यही साबित होता है कि हम स्वयं नास्तिक हैं।

एक बहिन:- दादाजी! उस समय यह समझ नहीं आती।

दादा:- इसलिए प्रभु तुम्हें सत्संग में लाया है कि तुम्हें यह समझ आए।

एक बहिन:- "दादाजी! फिर यह रहस्य कैसे समझ में आ सकता है?"

दादा : इस रहस्य को समझने के लिए हमारा मन अथवा मस्तिष्क बहुत ही छोटा है।

विदेश का एक बहुत बड़ा दार्शनिक था। उसका किस्सा दादाजी (साधु वास्वाणी) हमें बार-बार सुनाया करते थे। वह दार्शनिक प्रभु का भेद जानना चाहता था। एक सप्ताह उसने अपने आपको कमरे में बंद कर दिया। कितना ही समय बीत गया। उसने सोचा कि वह भेद जान लेगा। इस तरह तीन वर्ष बीत गए। अन्त में उसे अहसास हुआ कि प्रभु तो बेअंत है। वह जितना प्रभु का अधिक विचार करता है, उतना ही प्रभु को बेअंत पाता है। तीन वर्षों के पश्चात् वह कमरे से बाहर निकलता है। सोचता है कि ताज़ी हवा जाकर खाऊँ। समुद्र तट पर आकर टहलने लगता है। वहाँ क्या देखता है कि एक छोटा सा बालक एक छोटे से चम्मच से समुद्र का पानी बारबार लेकर किनारे पर फैंकता जा रहा है।

दार्शनिक ने मुस्कराकर उस बालक से कहा: "बालक, तुम क्या कर रहे हो?"

बालक बोला: "स्वामी! मैं इस चम्मच से समुद्र का पानी सुखाकर इसे खाली करना चाहता हूँ।" दार्शनिक ने कहा: "बालक! तुम होश में तो हो? इस छोटे से चम्मच से तुम इतने बड़े समुद्र को कैसे खाली कर सकोगे?"

बालक बोला: "स्वामी! यदि आप छोटे से मस्तिष्क से प्रभु का भेद जानना चाहते हो तो फिर यह बात क्या कठिन है?"

अब दार्शनिक की आँखे खुल जाती है। और वह कहता है: "निःसंदेह! मैं भी यही कार्य कर रहा हूँ जो यह बालक कर रहा है।" वस्तुतः हमें प्रभु का रहस्य समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

प्यारे दादाजी (साधु वास्वाणी) ने हमें "पागल हरिनाथ" पर दो या तीन उपदेश सुनाए थे। उन उपदेशों में एक घटना का वर्णन करते हुए प्यारे गुरुदेव ने कहा: एक दिन पागल हरिनाथ के प्रियजन आपस में मिलकर यह सोचने लगे कि उनका गुरु कौन है? और उनके गुरु क्या है? कोई कहता था सन्त हैं, कोई कहता था परम भक्त हैं। कोई कहता अवतारी पुरुष हैं। ऐसे बैठे आपस में वादविवाद कर रहे थे। इतने में पागल हरिनाथ स्वयं आकर वहाँ से गुजरे। पूछा: "क्या कर रहे हो?" उन प्रियजनों ने कहा: "स्वामी! हम आपको समझने का प्रयास कर रहे हैं।" उनके गुरुदेव ने कहा: "प्रिय! मुझे समझने का प्रयास मत करो, परन्तु मुझसे प्रेम करो। मुझसे प्रेम करोगे तो तुम्हे ज्ञात होगा।"

हमारा कष्ट यह है कि हम समझने का प्रयास करते हैं। हमें प्रयास करना चाहिए। परन्तु प्रेम करने के मामले में भी हमारा हृदय बहुत ही छोटा है। एक छोटा सा बालक था। छोटे बच्चों के मुख से भी कभी कभी विचित्र एवं गहरी बातें निकलती हैं। यह बालक मुझसे कहता है: "I Love God!"

मैंने उससे पूछा: "In which form do you Love God?"

वह बोला: "In the form of Sri Krishna I Love God.

मैंने कहा:- "Do you love him with all you heart?"

बोला: "No, my heart is so tiny I Love Sri Krishna with Krishna's heart."

देखिए, छोटा सा बालक था। बोला:- "मैं कृष्ण से प्रेम करता हूँ,

मेरा हृदय तो नन्हा सा है, उस हृदय से मैं प्रभु को कितना प्रेम कर सकता हूँ?" वह तो है सूखे नल के समान। जिसमें से एक एक बूँद पानी की बड़ी कठिनाई से निकलती है। वह कहता है:- "मैं श्रीकृष्ण को कृष्ण के हृदय से प्रेम करता हूँ।" हमारा कष्ट यह है कि हम प्रभु को समझने का प्रयास करते हैं। और समझ सकते नहीं।

१) बनी बनाई बन रही और कुछ बननी नांहि।

तुलसी ऐसा जानकर मग्न रहो मन मांहि।।

२) जो तुधु भावै साई भली कार,

तू सदा सलामल निरंकार ।।

ये दो बातें आज आप अपने साथ ले जाइए और जाकर उनका प्रयास कीजिए। प्रयत्न करिए। आप भी कीजिए और मुझे भी आशिर्वाद दीजिए कि मैं भी करूँ।

(पुणे 26-7-86)

हर हाल में सन्तोष

दादा :- आज का विचार :

"दस बसतू ले पाछै पावै
एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै।"

आज का विचार सुखमनी साहब की वाणी में से है। गुरु साहबजी कहते हैं:- ""दस वस्तुएँ, दस चीजें तुम्हारे पास बची हुई हैं, परन्तु एक वस्तु, एक चीज प्रभु ने तुमसे छीन ली है तो तुमने अपना विश्वास खो दिया है।

जो कुछ भी हमारे पास है, वह ईश्वर की देन है। हम इस संसार में आए कैसे? आपने स्वयं को नहीं देखा कि आप कैसे आए। परन्तु दूसरों को देख सकते हो। एक बहिन ने मुझे पुणे से लिखा कि मैंने जुड़वा बच्चों को जन्म दिया है। दोनो बच्चे दुबले पतले नन्हें से, मैं उनकी ओर देखती हूँ और सोचती हूँ कि मैं भी ऐसी ही पैदा हुई होगी। अब मैं कितनी तन्दुरस्त हो गई हूँ। इसमें भी तो मेरा लाभ ही लाभ है।

हममें से प्रत्येक मनुष्य ऐसे ही पैदा हुआ। और प्रत्येक को प्यारे प्रभु ने अपने भण्डार में से भर दिया है। अब यदि उस भरे हुए भण्डार में से प्रभु कुछ लेता है तो फिर हमें क्या अधिकार है कि हम उसमें विश्वास खो बैठें। कितना भी हमसे वापस ले ले फिर भी हमें लाभ ही लाभ है। और कुछ नहीं तो शरीर पर वस्त्र तो हैं। जब आए थे तो वस्त्र भी नही थे। आपने कभी देखा कि कभी कोई वस्त्रों सहित पैदा हुआ हो? उस बहिन ने लिखा कि अभी बच्चों के पैदा होने में काफ़ी समय था और हमने बच्चे के वस्त्र भी नहीं बनाए थे। जल्दी ही मेरे परिवार के लोग बाज़ार गये और कपड़ा लाकर बच्चों के वस्त्र सी डाले। बच्चे आते हैं वस्त्रों रहित

आप देखेंगे कि हर हाल में लाभ है।

कोई व्यक्ति कहता है कि इस वर्ष उसे दस लाख रुपयों की हानि हुई। इसका तात्पर्य यह है कि उसके पास दस लाख रुपये थे। तब तो हानि हुई। यदि इतनी हानि हुई तो अब भी उसके पास पर्याप्त धन है, वह तो लाभ है। आप आए, अपने साथ कुछ भी नहीं ले आए, आपकी पूँजी शून्य थी। अब आपको मकान है, जमीन है, बच्चे हैं, दोस्त हैं। हर स्थिति में आप देखेंगे कि आपको लाभ ही लाभ है।

"दस बसतू ले पाछै पावै
एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै।"

प्रभु यदि आप से कोई वस्तु आपकी भलाई के लिए छीन लेता है और वह भलाई आपको दिखाई नहीं देती, किन्तु आप उस एक वस्तु के खो जाने से अपना विश्वास खो बैठते हैं।

एक भी न दे, दस भी हर लै,
तो मूड़ा कह, कहा करै?

प्रभु यदि आपको वह एक वस्तु न दे, अपितु दूसरी दस भी आप से छीन ले, तो फिर ए मूर्ख! आप क्या कर सकते हैं? आप हर स्थिति में यह सिद्धान्त अपने सम्मुख रखिए: Count your Blessings. इस समय कागज़ लेकर उस पर सूची बनाइए कि अभी भी आपके पास शेष क्या रहा है। शरीर है, हाथ हैं जिनसे हम परिश्रम करके पुनः कमा सकते हैं। नेत्र है जिनसे हम देख सकते हैं। कितने ही बेचारे सूरदास हैं, जो देखने के लिए तरसते रहते हैं। कुछ सूरदास नहीं होते परन्तु उनकी आँखों में मोतियाबिन्द (cataract) होता है। एक बहिन मुझे मिली, बोली:- "मुझे बहुत कष्ट है" मैंने पूछा :- "बहिन! तुम्हें क्या कष्ट है?" बोली :- "दोनों आँखों में मोतियाबिंद है। मैं देख नहीं सकती। अब तक पक्का नहीं हुआ है। इसलिए डॉक्टर अभी आपरेशन नहीं कर सकता।" मोतियाबिंद प्रायः

एक आँख में होता है बाद में दूसरी आँख में होता है। परन्तु उस बहिन ने कहा कि उसे दोनों आँखों में मोतियाबिंद है।

हमारी आँखे, हाथ और पैर सब सुरक्षित हैं। हमें कितने ही रिश्तेदार हैं, कितने ही मित्र हैं, जो हमारे सुख दुःख बाँटते है। हमें रहने के लिए मकान है। हम सत्संग में जा सकते हैं Count your blessings. आप ऐसी एक हज़ार बातें ढूँढ सकेंगे, जिनसे आप प्रभु का आभार मान सकेंगे। जब इस अवस्था में आऐंगे तब आपको कोई चिन्ता नहीं होगी। यदि आप से कुछ भी छीन लिया जाए तब भी Count your blessings. प्राय: हमें कोई कष्ट होता है, अथवा कोई आपदा आ जाती है तब अन्य बातें भूल जाते हैं। उस समय प्रभु के उपहारों का विचार करें। कागज़ लेकर उस पर लिखना प्रारम्भ करें कि हमारे पास अब भी क्या क्या है।

आपको पता है इन आँखों का क्या मूल्य है? एक युवक था। बड़े कुल का था। वह काफ़ी धनवान था। परन्तु पैसा तो धूप छाँव है। अब वह काफ़ी निर्धन हो चुका था। उस युवक का एक युवती से प्रेम हो गया, वह भी बड़े कुल की थी। बहुत धनी परिवार की थी। उस युवती का भी इस युवक से प्रेम था। जब युवती के पिता से बात छेड़ी गई तो वह बोला :- "मैं इस कंगाल को अपनी बेटी कैसे दे सकता हूँ। वह पहले मुझे विश्वास दिलाए कि उसके पास लाखों रुपये हैं तब ही मैं उसे अपनी बेटी देना स्वीकार करुँगा।"

युवती अपने वकील के पास गई। बड़े घरों को अपने अपने वकील होते हैं। युवक को भी अपने साथ लेकर गई। वकील को पूरी बात समझा दी। बोली :- "अब तुम कुछ करो।" आपको तो पता है कि वकील कैसे चतुर होते हैं। वकील ने युवक से पूछा :- "तुम्हारे पास बैंक में कितने पैसे हैं?" युवक ने उत्तर दिया :- "बैंक में तो कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी कमाता हूँ, वह गुज़र-खर्च में ही खत्म हो जाता है। कुछ बचता ही

नहीं। आशा करता हूँ कि बैंक में जल्दी ही अकाऊन्ट खोल सकूँगा।" वकील ने कहा आशा की बात युवती के पिता नहीं समझेंगे। उसे ठोस प्रमाण चाहिए। वकील ने युवक से कहा :- "यह जो तुम्हारी आँख है, उसके लिए यदि मैं तुम्हें पाँच लाख रुपये दूँ तो तुम मुझे दे सकते हो?" युवक बोला:- "आँख कैसे दूँगा? दस लाख देंगे तब भी नहीं दे सकता, पंद्रह लाख देंगे तब भी नहीं दे सकता। आँख आपको कैसे दे सकता हूँ? फिर तो काना हो जाऊँगा। और जिसके लिए आप मुझसे आँख माँग रहे हैं वह भी मेरी ओर नहीं देखेगी।" वकील बोला:- "ठीक है! मुझे तुमसे इसी उत्तर की आशा थी।"

संध्या के समय वकील युवती के पिता से मिला और उससे विवाह की बात कही। युवती के पिता बोले:- "मुझे विश्वास होना चाहिए कि उसके पास कुछ पूँजी है" इस पर वकील ने कहा:- "मुझे निश्चित रूप से मालूम नहीं है कि उसके पास कितनी पूँजी है। पर इतना अवश्य मालूम है कि उसके पास दो चीजे हैं जिनमें से एक के लिए उसे पाँच लाख रुपयों का प्रस्ताव था पर उसने अस्वीकार कर दिया। इसका आशय यह है कि उसका मूल्य पाँच लाख से अधिक है। पिता ने सोचा उसके पास दस लाख तो कम से कम हैं।" बोला :-"ठीक है।"

इस बात से आप देखेंगे कि आपके पास क्या क्या है! Count your blessings. प्रभु के उपहारों का विचार करिए और उसका एहसान मानिए। एक छोटी सी बात पर आप प्रभु में से विश्वास खो देते हैं और कहते हैं:- "प्रभु कहाँ है? हमारे साथ सदैव अन्याय करता है। क्या हमारे लिए वह सब कुछ सोचता है? प्रभु सुनता कहाँ है? प्रभु तो बहिरा है।"

"दस बसतू ले पाछै पावै
एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै।"

हर हाल में आपको लाभ ही लाभ दिखाई देगा। केवल विचार करिए। कैसे आप आए और अब किस दशा में हैं। लाभ ही देखेंगे। परन्तु हमारा

स्वभाव ही ऐसा है। सीवत: मनुष्य का निर्माण ही ऐसा हुआ है जब कुछ मिलता है तो वह सन्तुष्ट रहता है और प्रभु की प्रशंसा करता है। परन्तु जब कुछ नहीं मिलता है तब प्रभु पर से उसका विश्वास उठ जाता है।

एक सत्संग में कितने ही प्रेमी आते थे। सत्संग में प्राय: कुछ न कुछ प्रसाद लेकर आते थे और बाँटते थे। एक दिन एक देहाती आया। उसे काकड़ी का खेत था। वह काकड़ियों का बोरा भर कर लाया। प्रत्येक को काकड़ी मिली। हर एक सत्संगी काकड़ी के टुकड़े को मुहँ में डालते ही बाहर जाकर फैंक आता था। एक सज्जन को देखा तो वह काकड़ी खा रहा था। सोचा उसे संभवत: मीठी काकड़ी मिली है जो अब तक खा रहा है। अन्य सब को तो कड़वी काकड़ी मिली है। तब उससे पूछा गया कि तुम्हें मीठी काकड़ी मिली है क्या जो तुम अब तक खा रहे हो?" उसने उत्तर दिया :- "मुझे भी कड़वी काकड़ी ही मिली है, परन्तु इस सन्त के सत्संग में हमें बहुत सी मिठाइयाँ, प्रसाद के रुप में मिली हैं। पहली बार हमें कोई कड़वी चीज़ मिली है, वह भी हमें खानी चाहिए।"

इसी प्रकार हमें भी अपने जीवन में कड़वे अनुभव मिलते हैं। मीठे अनुभव तो हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। सच्चा मनुष्य वह है जो कहे कि वह कड़वे अनुभव भी उसी प्रकार सहर्ष स्वीकार करेगा। कितने लाभ हमें मिले हैं। बैठकर विचार करे। आज घर जाकर सूची बनाए तो कितने लाभ हमें मिले हैं। प्रभु! मेरा जन्म कैसे हुआ? इस संसार में आया तब मेरी दशा कैसी थी? खड़ा नहीं हो सकता था। चल नहीं सकता था। किसी भी वस्तु की आवश्यकता होती थी तो बोल नहीं सकता था कि मुझे अमुक वस्तु चाहिए। शारीरिक पीड़ा होती थी तो बता नहीं सकता था कि मुझे कहाँ पर दर्द है। इस दशा में मैं इस संसार में आया तुम्हारी कृपा से ही मैं इस स्तर तक पहुँच सका हूँ। आप देखेंगे कि इसमें आपका लाभ ही लाभ है। एक एक बात में आप लाभ देखेंगे और जब आप लाभ देखेंगे

तब आपका विश्वास भी बढ़ता जायेगा।

एक बहिन :- दादाजी, हम इतना सुनते हैं, परन्तु उस समय न जाने क्या हो जाता है कि हमारा पूरा विश्वास टूट जाता है। सब कुछ जानते हुए भी हम लुढ़क जाते हैं। उस समय हम किस शक्ति को पकड़ें?

दादा :- इस प्रश्न के कितने ही उत्तर हो सकते हैं। एक उत्तर तो प्रश्न में ही समाया हुआ है। प्रश्न में कहा गया कि कौन सी शक्ति है, जो आकर हमारे विश्वास को हिला देती है? इस शक्ति को हम कैसे निकालें? उत्तर इसी के भीतर है। उस अन्धकार की शक्ति को हम निकालेंगे तब ही हमारा विश्वास दृढ़ होगा।

बहिन :- वह शक्ति विश्वास को दृढ़ होने ही नहीं देती।

दादा :- इसी कारण उसे अधिक दृढ़ करने का प्रयास करें। अपने विचारों में दृढ़ हैं तो फिर हम इस अंधकार की शक्ति को अपने भीतर आने ही नहीं देंगे। हमने पहले ही देखा है कि अंधकार की शक्ति विश्वास को निकाल देती है। इस कारण यदि हम विश्वास को पकड़कर खड़े होंगे तो अन्धकार की शक्ति हम पर हावी नहीं हो सकेगी। हम केवल विश्वास को पकड़ें। हमारा कष्ट यह है कि हम इन बातों पर विचार केवल महीने में पाँच दिन, अथवा दस या पन्द्रह दिन करते हैं, और वह भी पूरे दिन में केवल पाँच मिनट, दस मिनट, पन्द्रह मिनट अथवा आधा घण्टा ही करते हैं। परन्तु यदि हम निरन्तर विचार करते रहें तो हमारा विश्वास दृढ़ होता जाएगा। इसी कारण मैं प्रायः आपसे कहता हूँ कि प्रातःकाल कोई न कोई सूत्र लीजिए, किसी सन्त की वाणी में से अथवा गुरुवाणी में से या नूरी वाणी में से। दिन भर उसका जप करते रहिए। अपने विचार, अपना ध्यान उस ओर रखिए। आप देखेंगे आपको इससे शक्ति प्राप्त होगी।

एक बहिन :- दादाजी, कुछ लोगों का कहना है कि कृपा उस पर होती है जिसके पूर्व जन्म के कर्म किये होते हैं। मैंने तो ऐसे कर्म किये

ही नहीं हैं।

दादा :- ऐसा भी कहा जाता है, मैंने ऐसा सुना है कि जिसके पूर्व जन्म के कर्म अच्छे होते हैं, वह ही सत्संग में आ सकता है। इतना हो कि हम पूर्व जन्म का लाभ उठा सकें। पूर्व जन्म हम में से एक एक का अच्छा है, हम केवल आगे चलकर उसका लाभ उठा सकें।

"दस बसतू ले पाछै पावै
एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै।"

इन शब्दों में गुरु साहब हमारी तस्वीर खींचते हैं। हर स्थिति में, हर बात में हम लाभ देखें। कल मुझे एक प्रियजन ने कहा कि कल का विचार था :- "तुम बिन मेरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी!" फिर आपने मुहम्मद सहब की बात की कि कैसे प्यारे प्रभु ने उसकी रक्षा की। गुफ़ा में चले गये और मकड़ी ने गुफ़ा के मुंह पर अपना जाल बना दिया। कहने लगा मुहम्मद साहब की तो रक्षा की परन्तु हसन और हुस्सैन की रक्षा क्यों नहीं की? मंसुर की रक्षा क्यों नहीं की? गुरु अर्जुनदेव और गुरु तेग़बहादुर की रक्षा क्यों नहीं की? इस देश तथा अन्य देशों में कितने ही शहीद हो गये हैं, उनकी रक्षा क्यों नहीं की? इसका उत्तर हमें इन बातों में मिलता है। प्रभु हमें कितनी ही वस्तूएँ देता है, परन्तु यदि एक वस्तु वापस लेता है तो फिर उसमें भी कोई रहस्य है। यदि गुरु अर्जुनदेव शहीद नहीं होते थे तो भारत नहीं बच सकता था। भारत की रक्षा करने के लिए गुरु अर्जुनदेव जी को शहीद होना पड़ा। जिनके पश्चात् गुरु हरगोबिन्द जी आए। उन्होंने शक्तिशाली योद्धा एवं घुड़सवार खड़े किये, जिन्होंने मुगलों का सामना किया। यदि वे शहीद नहीं होते थे तो फिर बाते ही कुछ और होती।

इसलिए हम कहें कि :- "प्रभु! जो कुछ भी तुम करते हो उसमें हमारा ही भला है।" हम देख नहीं सकते, परन्तु हमें विश्वास है कि तुम

हमारे पिता हो और तुम हमारी माता हो, और पिता और माता कभी कोई ऐसी बात नहीं कर सकते जिसमें बच्चे की हानी हो। यह विश्वास आ जाए तो फिर ऐसे व्यक्ति से दस वस्तुएँ छीन लो, केवल एक वस्तु उसे दो तब भी वह उसमें संतुष्ट रहेगा। कहेगा इसमें भी भला है। इस में भी रहस्य है।

जलालुद्दीन रुमी एक बहुत ही बड़े सूफ़ी फक़ीर हो गये हैं। मैं समझता हूँ तेरहवीं शताब्दी में उनका जन्म हुआ था। सात सौ वर्ष बीत चुके हैं। आज तक उनका नाम श्रध्दा एवं सम्मान से लिया जाता है। उन्होंने एक पुस्तक मसनवी नामक लिखी है, जिसे शास्त्र के समान माना जाता है। कितने ही लोग प्रतिदिन उसका पाठ करते हैं। इसमें जलालुद्दीन रुमी कितनी ही कहानियों के द्वारा सुन्दर उपदेश देते हैं। एक बहुत ही मधुर कहानी इसमें दी हुई है। कहते हैं, एक व्यक्ति बहुत बीमार था। वह बहुत ही दुबला, लाठी के समान था। उसका मुख पीला हो गया था। हकीम के पास आता है। कहता है :- "हकीम साहब! मुझे बहुत ही कष्ट है। आप दवाई दीजिए।" हकीम उसकी नाड़ी का परिक्षण करते हैं, उसके मुख की ओर देखते हैं। कहते हैं :- "इसके बचने की तो कोई भी आशा नही है। कितनी भी दवाइयाँ इसको दी जाएँगी, इसे कोई लाभ नहीं होगा। इसे तो मृत्यु शीघ्र ही पकड़ने आ रही है। इससे तो अच्छा है क्यों न जो भी उसे चाहिए वह करे।" उसका आशय यह था कि जिस वस्तु की भी इसे इच्छा हो उसे खाकर अपना मन प्रसन्न करे। उससे बोला :- "तुम्हारी दवाई यही है कि तुम्हें जिस बात की भी इच्छा हो उसे तुम पूरा करो।" वह बीमार बोला :- "यह तो बहुत अच्छी दवाई है।"

हकीम के यहाँ से बाहर निकला तो आया नदी किनारे, जहाँ एक सूफ़ी फ़क़ीर स्नान कर रहे थे। उन्होंने वस्त्र उतारकर रखे ही थे तो उस बीमार ने उनको पीछे से देखा। उसे फ़क़ीर की गर्दन बहुत ही अच्छी लगी।

सोचा कि जाकर फ़कीर की गर्दन को पकड़ लूँ। हकीम साहब ने कहा है कि तुम्हें जिस बात की भी इच्छा हो तुम उसे अवश्य पूरा करो। यदि मैं अपनी इच्छा पूरी नहीं करूँगा तो फिर संभवतः मुझे हानि होगी और मैं मर जाऊँगा। मेरी औषधि यही है कि जिस बात पर मेरी इच्छा हो उसे मैं पूरा करूँ। यह सोच कर वह गया और पीछे से जाकर फ़कीर की गर्दन को पकड़ लिया। फ़कीर ने समझा कि काल ने आकर उनको पकड़ा है। पीछे मुड़कर देखा तो एक बीमार ने उसकी गर्दन को पीछे पकड़ लिया था। उन्हें इतना क्रोध आया कि वह उसे दो थप्पड़ मार कर सीधा कर दे। परन्तु उसकी दयनीय दशा देखकर सोचा कि कहीं थप्पड़ मारने से वह मर न जाए और उसका पाप उसके सर पर आ पड़े।

फ़कीर को काज़ी के पास ले आया। उन दिनों में काज़ी होते थे, जैसे आजकल कोर्ट में जज होते हैं। काज़ी से कहता है:- "इस व्यक्ति ने मुझसे ऐसा दुर्व्यवहार किया है कि इसे गधे पर बिठाकर पूरे नगर में घुमाया जाय अथवा किसी व्यक्ति को आज्ञा दीजिए कि इसे डण्डों से पीटकर समाप्त कर दे। इसे जीवित रहने का अधिकार नहीं है।" काज़ी ने कहा:- "ये बातें तो बाद में होंगी। पहले इसका दोष तो प्रमाणित करो कि वस्तुतः इसने तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार किया है। पर तुम थोड़ा सोचकर तो देखो कि ऐसे व्यक्ति को गधे पर बिठाकर नगर में घुमाया जाय, यह तो होगा गधे को सज़ा देना। इसका मुख तो देखो केवल हड्डियों का ढाँचा बच गया है। यह तो केवल डंडा दिखाने से ही यहीं पर गिर जायेगा।"

अभी यह वार्तालाप चल ही रहा था और काज़ी उस फ़कीर को समझा रहा था कि ऐसे बीमार व्यवित को छोड़ दो। इसमें भी तुम्हारा कोई भला ही होगा। वे अभी ये बातें कर ही रहे थे तो उस बीमार की दृष्टि काज़ी की गर्दन पर जा पड़ी, जो फकीर की गर्दन से भी अधिक लम्बी एवं चिकनी थी। बीमार ने सोचा यदि इसे नहीं पकड़ता हूँ तो फिर मुझे

ही हानि होगी। हकीम ने कहा था कि जिस बात की इच्छा हो उसे अवश्य पूरा करना। वह जाकर काज़ी की गर्दन को पकड़ लेता है। काज़ी ईश्वर भक्त था। सोचा इसमें भी कोई भलाई होगी, कोई रहस्य होगा। इस फ़कीर ने बहुत चिल्लाया; बोला:- "तुमने जो खड्डा अपने लिए खोदा है, अब तुम स्वयं इसमें गिर रहे हो। जो दशा मेरी हुई वह अब तुम्हारी हो रही है। अब देखता हूँ तुम क्या करते हो?" काज़ी सन्तोषी था। बोला:- "इसमें भी मेरा ही भला होगा, अन्यथा ईश्वर उस बीमार से यह कार्य नहीं करवाता था।"

काज़ी एक कान से बहिरा था। जैसे ही बीमार ने काज़ी की गर्दन को पकड़ा, वैसे ही काज़ी का बहिरा कान खुल गया। तब काज़ी फ़कीर से बोला:- "देखा! इसमें भी मेरा भला था। मैं तो तुमसे कहता रहा कि तुम्हारी भी भला होगा। परन्तु तुम स्वीकार नहीं कर रहे थे। चिल्लाकर अपनी भलाई गंवा दी।" एक एक बात जो हो रही है, इसमें हम लाभ देखें। Count your blessings.

(सिंगापूर: 6-5-83)

जीवन में आवश्यक दो कार्य

दादा आज का विचार:-

"तुलसी इस संसार में, कर लीजे दो काम।

देने को टुकड़ा भला, ले ने को हरि नाम।।"

सन्त तुलसीदास जी कहते हैं:- "इस संसार में दो कार्य करने हैं। एक देने का कार्य और दूसरा लेने का कार्य। देना हैं तो टुकड़ा देना चाहिए परन्तु लेना हो तो हरि का नाम लेना चाहिए।

सन्त तुलसीदास एक बहुत ही महान सन्त हो गये हैं। उनके जीवन के सम्बन्ध में हमें बताया गया है कि जब उनका जन्म हुआ तब तीसरे दिन उनकी माता का देहान्त हो गया। पिता को सन्देह हो जाता है कि यह बालक अपने साथ अच्छे ग्रह नहीं लाया है। इसलिए वह तीन दिन के बालक को फैंक देता है। फिर उस बालक का कभी कोई पालन पोषण करता था तो कभी कोई। संभवतः जिस के भी घर जाता था, वहाँ पर कोई न कोई दुर्घटना घटती थी, और उन्हें भी भ्रम हो जाता था और वे भी उसे फैंक देते थे।

जब वह सात वर्ष का होता है तब उसे एक सत्पुरुष मिलता है। गुरु नरहरिदास, जिसका विवरण तुलसीकृत रामायण में आता है। गुरु नरहरिदास उसे सात वर्षो से भी अधिक समय तक राम के सम्बन्ध में बताते हैं। वे बातें उनके अन्तः स्तल में इतनी तो अंकित हो जाती हैं कि वे उठते बैठते "राम" का उच्चारण करते थे।

चौदह वर्षो के होते हैं तब उनका विवाह रत्नावली से करा दिया जाता है। इसके पश्चात वे राम का नाम भूल जाते हैं। केवल रत्नावली,

रत्नावील। काम पर जाने के लिए भी उसका मन नहीं करता था। रत्नावली से कहता था कि वह भी उसके साथ काम पर चले। वह कहती थी:- "ऐसा कैसे होगा? मैं कैसे काम पर चल सकती हूँ? तुम्हें लज्जा नहीं आती?" अनिच्छा काम पर जाता था। कार्य से लौटते थे तो रास्ते पर भी रत्नावली उनके मन एवं मस्तिक पर छाई रहती थी। घर आते थे तो भी रत्नावली! रत्नावली! एक क्षणभर भी उसे अपने से दूर रखना नहीं चाहते थे। राम का नाम भूल गये।

एक दिन वे काम पर गये थे। रत्नावली को मायके से सन्देश आता है कि उसके पिता का श्राद्ध है, और वह अवश्य आये। वह बहुत ही प्रसन्न होती है। सोचती है कि अब वह कुछ समय के लिए उनसे दूर हो जाएगी। जो अधिक पीछे पड़ता है उससे कुछ समय के लिए दूर रहने की इच्छा होती है। वह पत्र लिखकर जाती है। उस पत्र में लिखती है :- "अचानक मुझे सन्देश मिला कि आज पिताजी का श्राद्ध है, इस कारण मैं घर जा रही हूँ, कल लौट आऊँगी।" तुलसीदासजी उस दिन थोड़ा देर से घर लौटते हैं। पुकारते हैं:- "रत्नावली! रत्नावली!" देखते हैं कि घर में तो अन्धेरा है। इधर उधर पुकारते हैं:- "रत्नावली! रत्नावली!" परन्तु रत्नावली तो वहाँ पर भी नहीं। देखते हैं कि एक पत्र पड़ा है। पत्र पढ़ता है। उसके सर में चक्कर आ जाता है। उस दिन तूफ़ान लग रहा था। वर्षा हो रही थी। रत्नावली का मायका नदी के उस पार था। नदी के एक ओर तुलसीदास का घर और दूसरी ओर रत्नावली का मायका। कहते हैं:- "रत्नावली के बिना मैं कैसे रह सकता हूँ? यह रात्रि मैं प्रतीक्षा में कैसे बिताऊँ? मैं कैसे जाकर रत्नावली से मिलूं?" नदी के तट पर आकर इस उम्मीद में खड़े हो जाते हैं कि कहीं कोई नाव आदि मिल जाय जैसे वे नदी पार कर सकें। तूफ़ान लग रहा था। नाव वाला उसे नहीं मिलता। अन्धेरे में देखते हैं कि पानी में कुछ तैर रहा है। समझते हैं कि कोई

लकड़ी का तखता है। वस्तुत: एक लाश थी। उन दिनों में ऐसा होता था। मैं समझता हूँ कि संभवत: अब भी काशी में जब किसी की मृत्यु होती है तो उसे गंगा में प्रवाह कर दिया जाता है। यह एक लाश तैर रही थी। उन्होंने समझा कि यह कोई लकड़ी का तखता है। उनकी आँखों पर अन्धकार का पर्दा चढ़ा हुआ था कि वे जाकर रत्नावली से मिलें। उस लाश पर बैठकर नदी पार करते हैं, और रत्नावली के पास आते हैं। रत्नावली आश्चर्यचकित हो जाती है। पहली बार उसे शीघ्र सोने का अवसर मिला था। वैसे तो वे उसे शीघ्र सोने नहीं देते थे। रत्नावली उससे कहती है:- "पूज्य पति! यह शरीर तो हड्डियों , रक्त एवं माँस का एक पिंजरा है। जितना प्रेम आपको इस शरीर से है, उसका यदि एक अंश भी आप राम को दे दें तो आप इस भवसागर से पार हो जाऐंगे।" ये शब्द रत्नावली के मुख से निकलते हैं। बाण के समान उनके हृदय में चुभ जाते हैं। उनकी आँखों से अन्धकार का पर्दा हट जाता है। तुलसीदासजी नये बन जाते हैं। फिर रत्नावली की ओर नहीं देखते। तुरन्त खोज में निकल पड़ते हैं। उनके हृदय में जो बचपन से राम की भक्ति थी वह लौट आती है। भिन्न भिन्न स्थानों पर जाते हैं। चित्रकूट और अन्य स्थानों पर जाते हैं। उनके हृदय में एक ही पुकार है, एक ही आवाज़ है:- "मैं तुमसे किधर मिलूँ? मैं तुम्हारा दर्शन किधर पाँऊ?" उनके हृदय में प्रेम तो था ही अब वह प्रेम केवल श्री राम के लिए हो गया है :- "मेरे राम! मेरे प्रिय! मैं तुम्हें कहाँ प्राप्त करूँ? कहाँ पर जाकर तुम्हें ढूँढूँ?" बात बहुत बड़ी है। इस खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान और दूसरे स्थान से तीसरे स्थान पर जाते हैं। उनकी उत्कण्ठा बढ़ती जाती है।

आपके भीतर कभी ऐसी पुकार आई है? प्रभु! मैं तुम्हें कहाँ प्राप्त करूँ? कहाँ जाकर तुम्हारी खोज करूँ? इसी पुकार के साथ आपके नयनों ने कभी अश्रु बहाये हैं? यदि हाँ तो आप सौभाग्यशाली हैं। यदि नहीं तो

फिर प्रभु से इस प्यास, इस उत्कण्ठा, इस प्रेम तथा हृदय के इस स्नेह के लिए प्रार्थना करिए। इस प्यास के बिना मनुष्य पशु के समान है।

हमारा जीवन भी पशु जीवन के समान है। हम खाते है, पीते हैं, पशु भी खाते और पीते हैं। हम काम करते हैं, पशु भी कार्य करते हैं। देखो बैल दिन भर कितना काम करता है। उस बेचारे को केवल रात को थोड़ा सा विश्राम करने को मिलता है। नींद उसे आती नहीं। हम वंश बढ़ाते है, पशु भी वंश वृद्धि करते हैं। और फिर हम एक दिन इस संसार से चल बसते हैं, वे भी एक दिन इस संसार से चल बसते है। हमारा जीवन पाशविक जीवन है। जब तक हमारे हृदय में प्रभु के लिए प्यास उत्पन्न नहीं हुई है, तब तक हम सच्चे मनुष्य नही हुए है।

फ्राँस में एक बार एक पार्टी हुई। उस पार्टी मे एक नास्तिक भी आया हुआ था। अन्य उपस्थित सभी आस्तिक थे। वे सब प्रभु के सम्बन्ध मे बात कर रहे थे। इस नास्तिक ने चिल्लाना आरम्भ कर दिया। बोला:- "प्रभु! प्रभु! क्या कर रहे हो?" यह सुनकर सब ठण्डी आहे भरने लगे। जिस बहिन ने उसे पार्टी पर बुलाया था उससे कहता है:- "यहाँ मेरा कोई भी नहीं है जो मेरा पक्ष ले? क्या मैं अकेला ही यहाँ पर हूँ?" तब वह बहिन उससे कहती है:- "नहीं, तुम्हारे साथ दो और भी हैं, जिन्हे प्रभु का ज्ञान नहीं है।" यह सुनकर वह व्यक्ति बहुत प्रसन्न हो गया कि कम से कम उसके साथ दो और भी हैं। पूछा:- "वे दो कौन हैं?" उस बहिन ने उत्तर दिया:- "एक है मेरा कुत्ता, और दूसरी है मेरी बिल्ली। ये दो तुम्हारे साथ हैं। इन्हें प्रभु का ज्ञान नहीं है, क्योंकि ये पशु हैं।" यद्यपि मैं तो ऐसा मानता हूँ कि कुछ पशुओं को भी प्रभु का ज्ञान होता है। किसी किसी पशु की आँखों में न जाने कैसी विचित्र चमक होती है।

कितना अच्छा हो यदि यह प्यास हमारे हृदय के भीतर भी जागृत हो। इस प्यास का बहुमूल्य खजाना सन्तों एवं सतपुरुषों के पास है। वे हमें

पुकारते रहते हैं:- "है कोई जो आकर इस प्यास का खज़ाना हमसे लें?" एक सत्पुरुष थे। जब अस्सी वर्ष के हुए तब एक दिन अपने प्रियजनों को बुलाकर कहते हैं:- "अब मुझे बुलावा आ गया है। नाव आ रही है। मैं उसमें बैठकर चला जाऊँगा।" दो तीन दिन के पश्चात् कहते हैं:- "आज तुमसे विदाई लेता हूँ।" लेट जाते हैं। उनकी आँखों में आँसू आ जाते है। रोने लगते हैं। तब जो उनके चारों ओर थे, कहते हैं:- "स्वामीजी! आप के लिए तो मृत्यु है ही नहीं। आप तो अपने घर जा रहे हैं, आप क्यों रो रहे हैं?" ये सत्पुरुष कहते हैं:- "प्रिय! मेरे रोने का कारण यह है कि मैं यहाँ पृथ्वी पर आया, प्रभु ने मुझे बहुमूल्य खज़ाना दिया। मैं कई स्थानों पर गया, कोई भी नहीं मिला, जो मुझसे यह खज़ाना ले ले।" ये सब प्रभु के प्रिय जो इस संसार में आते हैं, घूमते हैं, इधर उधर जाते हैं कि कहीं कोई मिल जाय। परन्तु हम अपने कार्यों में, अपने व्यापार में, अपने परिवार में व्यस्त रहते हैं। वे रोते हुए यह बहुमूल्य खज़ाना लौटा ले जाते हैं।

कितना अच्छा हो यदि यह प्रेम, यह उत्कण्ठा, यह स्नेह, यह इश्क हमारे भीतर जागृत हो। जब यह प्यास हमारे हृदय में उत्पन्न होती है, तब हमारे हृदय जीवित होते हैं। जिस हृदय में स्मरण नहीं है, वह हृदय मुर्दादिल है। जब किस के हृदय के भीतर यह प्यास, यह उत्कण्ठा उत्पन्न होती है, तब उसे यह प्रेम बेआराम कर देता है। उसे रात को भी चैन नहीं होता है और वह रात भर प्रभु को पुकारता रहता है। दिन का कार्य करने के साथ उसका हृदय प्रभु के साथ जुड़ा रहता है। तब वह ऐसी मंजिल पर जा पहुंचता है जहाँ प्रभु स्वयं आकर उसे दर्शन देता है।

सन्त रामकृष्ण परमहंस, दक्षणेश्वर मन्दिर में पुजारी होकर नौकरी करते हैं। प्रतिदिन पूजा करते हैं। उन्हें यह विचार आता है कि यह काली माता की मूर्ति केवल एक निर्जीव मूर्ति है क्या? सोचते हैं इस मूर्ति के भीतर कुछ तो होगा जो इतने लोगों को आकर्षित करती है? सैंकड़ों

ज़ारों यात्री यहाँ पर दर्शन करने के लिए आते हैं। यह केवल पत्थर तो हीं हो सकता? यह कोई धातु भी नहीं हो सकता? कुछ तो इस में अवश्य ोगा? सोचते हैं कि वे उसकी सत्यता जानने का प्रयास करें। उनके हृदय में यह प्यास और यह तीव्र बेचैनी उत्पन्न होती है। जैसे आप समुद्र की लहरों में बेचैनी देखते हैं, समाप्त ही नहीं होती है। सदैव तड़पती रहती हैं। मुझे गोल्डिन बीच पर ले चले। मैंने देखा लहरों में कितनी अधिक तड़प थी। जब ऐसी तड़प हृदय में उत्पन्न होती है, भोजन भी अच्छा नहीं लगता, बातचीत अच्छी नहीं लगती, किसी से मिलना जुलना अच्छा नहीं लगता, कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मनुष्य सोचता है कि वह केवल अपने प्रियतम के चरणों में बैठा रहें। बैठकर उसे पुकारे। बैठकर प्रभु के मुख कमल की ओर देखे।

सन्त रामकृष्ण के हृदय में इतनी उत्कण्ठा बढ़ जाती है कि वे एक दिन कहते हैं:- "अब मैं अधिक सह नहीं सकता। उलझन एवं प्रेम की अग्नि जो मेरे भीतर है, उसकी जलन मैं सह नहीं सकता।" सामने देखता है कि तलवार लटक रही है। काली माता के मन्दिर में सदैव तलवार टँगी हुई रहती है। वह तलवार लेकर माँ काली से कहते हैं:- "माता! अब यदि मुझे दर्शन नहीं देती, मेरे हृदय की प्यास नहीं बुझाती तो मैं स्वयं को समाप्त करता हूँ। मैं अधिक जीवित रहना नहीं चाहता।" तलवार गर्दन पर रखने ही वाले थे तो एक प्रकाश होता है। उसका वर्णन स्वयं सन्त ने किया है। कहते हैं :- "प्रकाश होता है। और उस प्रकाश में मेरी चेतना चली जाती है। मैं न जाने कितना समय अचेतनावस्था में था।" वे ऐसी मंजिल पर जा पहुँचे है, जहाँ वे माता से मिलते हैं, बात चीत करते हैं और आशीर्वाद ग्रहण करते हैं।

तुलसीदासजी की उत्कण्ठा भी बढ़ती जा रही थी। अन्ततोगत्वा उन्हें राम का दर्शन प्राप्त होता है। श्रीराम तो जीवित शक्ति है। श्याम तो जीवित

शक्ति है। गुरु नानक भी जीवित शक्ति है। आज भी हम उन्हें मिल सकते हैं। उनसे बात कर सकते हैं। उनके साथ घूम सकते हैं।

एक प्रेमी:- क्या साधु वास्वाणी भी सर्व व्यापक हैं?

दादा :- सब सत्पुरुष सर्वव्यापी हैं। केवल हमें वह प्यास चाहिए, वह विश्वास चाहिए।

तुलसीदासजी को दर्शन होते हैं। फिर लिखना प्रारम्भ करते हैं वह परमशास्त्र, जिसे कहते हैं "रामचरितमानस"। मानस अर्थात सरोवर। मानसरोवर जिसे आप कहते हैं। राम के चरित्र (जीवन) का मानसरोवर। The Lake of the deeds of Sri Rama. इस शास्त्र के लिए महात्मा गांधी कहते थे:- This is the greatest book in the devotional literature of the world. महात्मा गांधी के हृदय के भीतर कोई भी भेद भाव नहीं था। उनके लिए सब धर्म समान थे। महात्मा गांधी कहते थे कि मैंने कितने ही धार्मिक ग्रन्थ देखे हैं, परन्तु भक्ति साहित्य में सबसे महान शास्त्र है "रामचरितमानस"। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब तक आकाश में सूर्य होगा, रात्रि को तारे होंगे, नदियाँ होंगी, पर्वत होंगे तब तक यह ग्रन्थ कितने ही प्यासे हृदयों को अपना सन्देश देता रहेगा।

"तुलसी इस संसार में कर लीजिए दो काम।
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरि नाम।।"

प्रातःकाल उठकर कहें:- "प्रभु! मुझे आशीर्वाद दो। आज तुमने मुझे नया दिन प्रदान किया है। परन्तु मुझे अवसर देना ताकि मैं किसी न किसी को कुछ दे सकूँ और तुमसे हरि नाम की भिक्षा माँगू। हम जब रात को सोने जाएँ तब हम स्वयं से पूछें:- "आज किसे कुछ दिया? आज नाम का स्मरण किया?"

एक सत्संगी:- "दादाजी, साधु वास्वाणी कहा करते थे कि जो कुछ

ाने दिया वह बचाया, परन्तु जो रख दिया वह राख हो जायेगा। आप
ा पर प्रकाश डालें, हम तो देने में कंजूसी करते हैं।"

दादा:- सब सन्तों का उपदेश यही है। मैं बम्बई में था तो मैंने सत्संग
भाईयों एवं बहिनों को पैसे रखने की छोटी पेटियां (boxes of
essings) दी। मैंने उनसे कहा इन पेटियों पर आशीर्वाद है। उन्होंने पूछा:-
हम इन पेटियों का क्या करें?" मैंने कहा:- "नाश्ता करते समय, दोपहर
भोजन के समय, रात्रि के भोजन के समय, भोजन ग्रहण करने से पूर्व,
ु की कृतज्ञता मानने का ये भी एक स्वरुप है कि इन पेटियों में कुछ
कुछ डालें, जो निर्धनों की सेवा में खर्च किया जाए। हर भोजन के समय
में प्रभु की कृतज्ञता माननी चाहिए। हम समझते हैं कि भोजन पर केवल
मारा ही अधिकार है। क्योंकि हमें आसानी से मिलता है। आपके इस नगर
कितने ही हैं जिन्हें खाने के लिए नहीं मिलता है। कल मुझे हमारी एक
हेन ने कहा कि वह कल माऊँट रोड पर गई थी। वहाँ उसने एक छोटा
बालक ६-७ वर्ष का देखा। उसके जेब भरे हुए थे, जिनमें से निकालकर
इ कुछ खा रहा था। यह बहिन उसके समीप गई, उससे पूछती है:- "तुम
ा खा रहे हो?" बालक कहता है:- "मुझे भूख लगी है। अन्य कुछ नहीं
लता तो फिर समुद्र तट की यह रेत निकालकर खा रहा हूँ।" यह बहिन
उससे पूछती है:- "तुम्हारा पिता क्या करता है?" बालक उत्तर देता है:-
छियारा है। मछलियां पकड़ता है, तीन-चार रुपये रोज कमाता है। परन्तु
े पीने की आदत है। घर में कुछ भी नहीं देता।" उस बालक के कपड़े
टे हुए थे और वह रेत खा रहा था। आपको विश्वास नहीं आएगा। फिर
इ बहिन उस बालक को एक दुकान पर ले जाती है, उसे वस्त्र लेकर
ी है। खाना देती है। परन्तु यह तो हुआ केवल एक दिन के लिए। ऐसे
तने ही व्यक्ति होंगे। विशेषत: छोटे बालक, उनका क्या दोष है जो बैठकर
ा खाएँ? मैं कई बार रात को निकलता हूँ यह देखने कि कैसी दशा है।

एक रात को मैं एक तंग गली में से गुज़र रहा था। एक आवाज़ मेरे कान पर पड़ती है:- "माँ! भूख लगी है। खिचड़ी कब तैयार होगी?" मैं उस घर के भीतर गया। घर क्या था, एक छोटा सा कमरा जिसमें माता और उसके पाँच बच्चे रहते थे। खाना पकाना, स्नान आदि सब उस एक कमरे में। एक कोने में चूल्हें पर एक हंडिया रखी थी। बच्चे पूछ रहे थे:- "माँ! खिचड़ी कब पकेगी?" माँ ने उनसे कहा:- "देखो हंडिया चूल्हे पर रखी है, जैसे ही पक जाएगी तुम्हें खाने के लिए दे दूँगी।" मैंने जाकर उस हंडिया का ढक्कन ऊपर उठाया तो क्या देखा कि उसके भीतर केवल पानी था, अन्य कुछ भी नहीं था। माता से पूछा, बोली:- "आज पूरा दिन घर में अन्न का एक कण भी नहीं आया है, जिसे पकाकर बच्चों को खिला सकूँ। पूरा दिन पुकारते रहे हैं। पुकार पुकार कर सो जायेंगे। कल प्रभु कुछ न कुछ भेजेगा, जिसे पकाकर मैं इन्हें खिलाऊँगी।" ऐसी दशा हमारे सिन्धी भाई एवं बहिनों की है। फिर रात को ही किराने की दुकान खुलवाकर मैंने माता से कहा:- "तुम्हें जितना अन्न चाहिए वह ले जाओ।"

एक शीतकालीन रात्रि में मैं एक घर गया। आपके यहाँ जाड़े का मौसम नहीं होता। हमारे यहाँ जाड़े में काफ़ी ठंड होती है। उस घर में एक छोटे से बालक का जन्म हुआ था। दो दिन का बालक घर में कम्बल नहीं था जिससे बालक को लपेट सकें। एक टावल में उस बालक को लपेट कर रखा था। घर के सभी सदस्यों के पास कम्बल नहीं था। ऐसे अच्छे घर के लोग भीख नहीं माँगते। वे कहते हैं भले ही हम भूखे रहें। जैसे सुदामा अपनी पत्नी से कहता है:- "मैं कृष्ण के पास जाऊँगा परन्तु माँगूगा कुछ भी नहीं।" उसकी पत्नी कहती है:- "तुम एक बार उसके पास जाकर तो देखो। उसे अपने आप मालूम हो जाएगा कि तुम्हें आवश्यकता है।"

मेरी तो इच्छा है कि ये पेटियां आप भी अपने पास रखें। नाश्ता करते समय, दोपहर को भोजन करते समय अथवा रात्रि को खाना खाते समय

ाने से पहले पेटी में कुछ डालिए। बम्बई में तो एक रुपया कम से कम लते हैं। प्रत्येक मास जो कुछ भी इकट्ठा होता है, वह साधु वास्वाणी शन का सेवाधारी जाकर ले आता है। ये पैसे निर्धनों एवं दीन दुखियों र खर्च किये जाते हैं। आपके घरों पर बरकत आएगी। जो भी देता है, से अनायास प्रभु की आशीर्वाद मिलती है।

एक प्रेमी:- देने के समय हम थोड़ा सा देते हैं, यह कंजूसी हमारी र कीजिए।

दादा :- यह कंजूसी दूर होती है देने से। जैसे जैसे देते जाएँगे कंजूसी र होती जायेगी। कोई न कोई नियम अपने ऊपर रखें। प्रभु के प्यारों ने लग अलग प्रणालियाँ बताई हैं। किस ने कहा है कि जो भी आमदनी होती उसका दस प्रतिशत दान करना चाहिए। जिन्होंने ऐसा करके देखा है नका अनुभव है कि जो एक सौ रुपये में से दस रुपये देते हैं, उनके बाकी ब्बे रुपयों पर इतनी अधिक बरकत होती है जो सौ रुपयों पर भी नहीं ती। ऐसा करने से हम प्रभु के समीप जाते हैं। इसे कहते हैं:- "The ord's share. प्रभु, यह भाग तुम्हारा है। जैसे तुम प्रेरणा दोगे वैसे ही खर्च करेंगे। ऐसा करने से आप अपने जीवन में कई चमत्कार देखेंगे।

एक युवक प्रसन्नतापूर्वक अपनी आमदनी में से दस प्रतिशत ईश्वर देना चाहता था, परन्तु उसका वेतन बहुत कम था, केवल तीन सौ ये। उसने सोचा कि ऐसा करने से वह निर्वाह कैसे कर पाएगा? वेतन र्याप्त नहीं था। महीने के अन्तिम दिनों पर कर्ज लेना पड़ता था। ऐसे र्जा बढ़ता गया। उसने सोचा, यदि तीन सौ में से तीस रुपये प्रभु को दूँगा फिर शेष दो सौ सत्तर रुपये में से घर का खर्चा कैसे पूरा होगा? न्तु कहता है:- "प्रथम महीने में ही मैंने चमत्कार देखा। मैंने तीस रुपये कर पेटी में डाले। और बोला:- प्रभु! ये तुम्हारे हैं। जैसे तुम प्रेरणा दोगे खर्चा करूँगा। मेरे केवल दो सौ सत्तर रुपये हैं।" और आगे कहता

है "मै Chain smoker था। एक बीड़ी पीकर खत्म करता था तो दूसरी लेता था। दूसरी समाप्त होती थी तो तीसरी लेता था। ऐसे लगातार बीड़िया पीता रहता था। अब यह आदत न जाने कैसे समाप्त हो गई। और मेरे कितने पैसे बच गये। इतनी बरकत मुझ पर आई है। न जाने प्रभु कैसे आकर रक्षा करता है।" प्रभु का यह वचन है। प्रभु कहता है:- "तुम केवल मेरे पास आओ। रक्षा करना मेरा कर्तव्य है।" मेरे प्रिय! जितना भी भाग तुम चाहो दसवाँ भाग, चालीसवाँ अथवा जितना भी भाग तुम दे सकते हो, अवश्य दो। तुम पर बरकत आएगी।

प्रेमी: हम व्यापारी कितनी ही बार लालचवश होकर देते हैं। कहते है कि यह हिस्सा ईश्वर का है, परन्तु लाभ की अपेक्षा करते हैं।

दादा:- अपेक्षा अवश्य ही कीजिए किन्तु प्यारे प्रभु को कुछ हिस्सा अवश्य दीजिए।

"तुलसी इस संसार में, कर लीजे दो काम।
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरि नाम।"

फिर ऐसी अवस्था आती है, कि मनुष्य इस राह पर चलते हुए परम पद को प्राप्त कर लेता है। यह टुकड़ा क्या है? यह है हमारा अभिमान मैं, मैं। जिसने यह टुकड़ा दिया, वह पार पहुँच जाता है। यह टुकड़ा हमे देना है। जो कोई भी मैं मैं का त्याग करता है, विनम्र होता है, शून्य बनता है, उसे ही प्रभु का नाम मिलता है।

प्रेमी:- हमें ज्ञात है कि सत्य में बहुत ही अधिक शक्ति है। फिर भी हम सत्य को छोड़कर असत्य की राह पर चलते हैं। ऐसा क्यों होता है इसे कैसे दूर किया जाय?

दादा: यह है माया। जानते हुए भी हम अनजान हो जाते हैं। इसकी औषधि है संग, सन्तों, सत्पुरुषों एवं प्रभु के प्रियजनों का संग। जितन

अधिक संग करेंगे उतना ही हमारा अन्त:करण शुद्ध होता जाएगा। इस समय हमारे अन्त:करण पर मैल चढ़ा हुआ है और उस मैल के प्रभाव में आकर हम असत्य में गिरते हैं, धोखा देते हैं, प्रलोभन के पीछे दौड़ते हैं और वासना के अधिकार में आ जाते हैं। उस समय हम अन्धे हो जाते हैं। कभी कभी हम जब थोड़े से सजग होते हैं तब कहते हैं कि यह अन्तिम बार है और फिर ऐसा नहीं करेंगे। परन्तु यह अन्तिम बार कभी आता ही नहीं। इसकी औषधि है सुसंगति, एवं आत्मविचार।

एक प्रेमी: दादाजी, हम साधारण मनुष्यों के लिए सत्य की परख करना और सत्य के मार्ग पर चलना बहुत ही कठिन है।

दादा:- नि:सन्देह! साधारण मनुष्यों के लिए आशा अधिक है। हम केवल एक कदम आगे बढ़ाएंगे तो प्रभु स्वयं दस कदम आगे बढ़कर आएगा। परन्तु यह एक कदम सच्चाई से आगे बढ़ायें। इसलिए सच्चाई की आवश्यकता है। यह सच्चाई आती है प्रार्थना से। सन्तों एवं सत्पुरुषों के सुसंगति द्वारा और आत्मविचार द्वारा। मौन बैठकर हम स्वयं से प्रश्न करें:- "वास्तव में मैं हूँ कौन? जूठ के प्रभाव में आकर मैं अपने पैर पर स्वयं कुल्हाड़ी मार रहा हूँ। अन्य कोई नहीं मारता।" इस विचार के द्वारा भीतर जागृति आती है। प्रतिदिन पांच अथवा दस मिनट हम स्वयं को यह स्मरण दिलाएँ। मौन में बैठकर स्वयं से पूछें:- "मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? किसलिए आया हूँ? मुझे कहाँ जाना है?" इसमें एक और बात जो सहायता करती है वह है निश्काम सेवा। किसी न किसी दुखी दरिद्र एवं दीन की प्रतिदिन सेवा करें और उसके बदले में कुछ न माँगे। प्रभु! तुम्हारे चरणों में ये पुष्प भेंट रखता हूँ। कृपा करके स्वीकार करो। हमारे भीतर जो मैल है वह धीरे धीरे साफ होती जाऐगी। पर होता क्या है कि हम प्रतिदिन साफ तो कम करते हैं, परन्तु चढ़ाते अधिक हैं। हम जितनी मैल अपने साथ लाए थे उससे अधिक मैल अब हम पर चढ़ी हुई है। यह माया के

प्रभाव से बढ़ी है। इस कारण सत्संग की आवश्यकता है।

एक प्रेमी:- कहते हैं कि, सब कुछ कार्य कराने वाला तो प्रभु स्वयं है। उसकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। फिर मनुष्य समझते हुए भी सत्य को ढक देता है। असत्य को प्रेम करता है। इसके लिए दोषी परमात्मा है अथवा मनुष्य?

दादा:- दोषी परमात्मा है यदि मैं समझूँ कि सब कुछ परमात्मा करता है। मैं तो केवल एक यंत्र हूँ। देखिए, यदि मैं शुभ काम करता हूँ तो मुझे कितनी प्रसन्नता होती है, जब लोग मेरी प्रशंसा करते हैं कि मैने कितना अच्छा काम किया है। अब यह अच्छा काम मैंने किया है और बुरा काम प्रभु ने किया है। परन्तु यदि मैं प्रभु के चरणों में अर्पण करता हूँ कि प्रभु! मैं कुछ भी नहीं हूँ, मैं केवल एक यंत्र हूँ और तुम ही कार्यकर्ता हो। ऐसे व्यक्ति को यदि कोई दाईं ओर थप्पड़ मारेगा तो वह बाईं ओर दे देगा। परन्तु दूसरे प्रकार के व्यक्ति को यदि कोई एक थप्पड़ मारेगा, तो वह उसे दो थप्पड़ मार देगा। इसमें प्रभु का दोष नहीं है। यह हमारा "अभिमान" है। जब तक हमारा अभिमान नष्ट नहीं हुआ है तब तक हम ऐसा नहीं कह सकते कि सब कुछ करने वाला प्रभु ही है।

(मद्रास : 12-12-92)

जो आए, वे स्वीकृत हुए

दादा : आज का विचार :–

"मुझे माफ़ करो, मुझे साफ़ करो, मुझे नया बनाओ, मुझे निर्मल बनाओ, मुझे पवित्र बनाओ, मुझे दीन बनाओ, मुझे मिस्कीन बनाओ, मुझे शून्य बनाओ।"

मैं न जाने कितनी बार यह प्रार्थना करता हूँ :- "प्रभु! मुझे कब नया बनाओगे?" परन्तु दुःख की बात है कि मैं अब तक वैसे का वैसा हूँ। वही आदतें, वही स्वार्थीपन और वही खुदगर्ज़ी। प्रभु! जब तुम्हारी कृपा होगी तब ही मैं नया बन सकूँगा।

एक व्यक्ति ने कहा कि वह पानी का लोटा भरकर पेड़ का एक एक पत्ता साफ़ कर रहा था। एक ओर से साफ़ करता था तो दूसरी ओर से पत्ता खराब हो जाता था। लोगों ने उससे कहा:– "तुम्हें क्या हो गया है? क्या कर रहे हो?" उसने उत्तर दिया:- "मैं वृक्ष को साफ़ कर रहा हूँ" लोगों ने कहा :- "तुम वृक्ष को कैसे साफ़ कर सकोगे?" इतने में वर्षा शुरू हो गई। वर्षा से न केवल एक वृक्ष परन्तु सब वृक्ष धुलकर साफ़ हो गये।

जब कृपा की वर्षा होती है, तब न केवल यह बन्दा, परन्तु आप में से कितने ही तत्काल साफ़ हो सकते हैं।

एक बहिन :- दादाजी! हम तो गुनाहों में गिरफतार हैं, क्या प्रभु हमारी पुकार सुनेंगे, अथवा हम से हमारे कर्मों का लेखा माँगेंगे?

दादा :- एक सत्पुरुष थे। जो भी उनके पास आते थे, उन्हें कहते थे :- "जो भी आए, वे स्वीकृत हुए।"अपने प्रियजनो से परीक्षाएँ नहीं लेते

थे। कहते थे :- "मैं कौन जो परीक्षा लूँ, जब मुझसे परीक्षा नहीं ली गई।"

एक बहिन :- दादाजी! स्वीकृत हुए का अर्थ क्या है?

दादा :- स्वीकृत हुए का अर्थ है वे कबूल हो गये और पार पहुँच गये। हम कितनी भी ऊँची मंजिल पर पहुँच जाएँ, फिर भी हमारे कदम चींटी के समान ही हैं। चींटी चलकर रसोई घर तक अथवा स्टेशन तक ही पहुँच सकती है।

'स्वीकृत हुए।' केवल हम प्रभु की राह पर आएँ, और आने का संकेत है: "शुक्र! शुक्र!" ऐ दिल न कर फ़िक्र! कर शुक्र! कर शुक्र!" ये शब्द साधु वास्वाणी चौक पर उनकी प्रतिमा के नीचे अंकित किए हुए हैं। जो भी आते हैं उन्हें यह ज्ञान होता है कि जो कुछ भी हो रहा है, उसमें हमारा ही भला है।

'शुक्र' शब्द की व्याख्या एक दिन पूज्य साधु वास्वाणीजी ने हमें समझाई थी। बोले :- "शुक्र" शब्द बना हुआ है तीन व्यंजनों से : श+क+र "श" है शाह "क" है करना और "र" है राज़ी (प्रसन्न)। अर्थात् जो कुछ भी शाह (प्रभु) करता है उस पर राज़ी रहना चाहिए।

एक प्रेमी :- दादाजी! आपने जो हमें अपनी ओर आकर्षित किया है, क्या इसका भी किसी पूर्व जन्म से सम्बन्ध है?

दादा :- प्रिय! मैंने नहीं आकर्षित किया है। आकर्षित करने वाला आपको आकर्षित कर रहा है। आपको मालूम है कि चुम्बक (magnet) दो प्रकार के होते हैं। एक को कहते हैं Permanent magnet अर्थात स्थायी चुम्बक और दूसरे को कहते हैं Permanent Induced magnet (अर्थात् स्थायी प्रेरित चुम्बक) यदि एक बार चुम्बक हो गया तो फिर सदैव के लिए चुम्बक हो जाता है। दूसरे होते हैं Induced Magnet जैसे बिजली की घण्टी (Electric Bell) होती है! बटन को दबाइये तो बिजली की शक्ति

से घण्टी ज़ोर से बजती है, फिर current लौट जाती है। जितना समय उस पर प्रभाव है उतना समय चुम्बक है। प्रभाव चला गया तो फिर वह किसी भी काम का नहीं है। आकर्षित करने वाला आपको आकर्षित कर रहा है।

एक बहिन :- मन में से सूक्ष्म अहंकार कैसे जा सकता है?

दादा :- "तेरी शरण में आई हूँ, मुझे पार उतार!" यह प्रार्थना तुम करती रहो। यह सूक्ष्म अहंकार जो सुई से भी अधिक सूक्ष्म है, वह हमें उलझन में डाल देता है। न जाने कहाँ से घुस आता है। मैं जब छोटा बालक था, रास्ते पर जब भी कोई तमाशा दिखाने वाला अथवा कोई मदारी आता था तब मैं लोगों की टाँगो के बीच से घुसकर जाकर तमाशा देखता था। किसे पता भी नहीं चलता था। सूक्ष्म अहंकार भी ऐसा ही है। न जाने कहाँ से आ जाता है।

मैं पूज्य साधु वास्वाणीजी के साथ जेल में इस प्रकार ही गया। मेरी आयु इतनी कम थी कि पुलिस मुझे पकड़ने के लिए तैयार नहीं थी। मैं खड़ा था। पुलिस ने कहा इस छोटे से बालक को मत पकड़ो। सत्याग्रह आंदोलन हुआ था। चौदह लागों को पकड़ा था। पहले पूज्य साधु वास्वाणीजी को पकड़ा। फिर दूसरों का पकड़ा। मैंने कहा:- "पूज्य साधु वास्वाणीजी जेल में जाएँगे, मैं कैसे बाहर रह सकता हूँ?" पुलिस खड़ी थी। उनकी टाँगो में से घुस गया।

एक बहिन :- पूज्य साधु वास्वाणीजी जेल में क्यों गए थे?

दादा :- कराची में कुछ हुआ था। उस पर पूज्य साधु वास्वाणीजी ने सत्याग्रह आंदोलन चलाया और उस सत्याग्रह आंदोलन के जितने भी कार्यकरता थे उन सबको सरकार ने जेल में डाल दिया था।

एक बहिन :- "शुक्र" वाले व्यक्ति की और कौनसी निशानी है?

दादा :- उसे प्रभु में पूर्ण विश्वास है। एक बहिन के पति का देहान्त हो गया। वह विधवा हो गई। उसके पास जो भी पैसे थे वे अन्तिम क्रियाकर्म पर खर्च कर दिये। उसके पास बाकी कुछ भी बचा हुआ नहीं था। एक कम्पनी ने उसे बहुत बड़ी रकम का बिल भेजा। इस विधवा को स्मरण था कि उसके पति ने उस बिल के पैसे भर दिये थे। कम्पनी वालों ने कहा कि हमारे रिकार्ड दिखाते हैं कि हमें पैसे नहीं मिले हैं। कम्पनी वालों ने उससे कहा कि हम तुम्हें तीन महीने देते हैं। यदि तुम तीन महीनों के भीतर पैसे नहीं भरोगी तो फिर हम तुम्हें पुलिस के हवाले कर देंगे। तीन महीनों के पश्चात् कम्पनी का प्रतिनिधि उसके पास आता है। इस बहिन को प्रभु में पूर्ण विश्वास था। बोली:- "प्रभु! तुमको तो ज्ञात है कि हमने पैसे भरे हैं। परन्तु रसीद नहीं मिल रही है। (पूरा घर छान मारा था, परन्तु उसे रसीद नहीं मिली थी)। अब तुम ठीक समय पर ही कार्य करोगे। या तो तुम पैसे भेजोगे अथवा रसीद भेजोगे।"

कम्पनी का आदमी आ खड़ा हुआ। बोला:- "तुम यदि पैसे अभी नहीं देती तो फिर मैं तुमको पुलिस के हवाले कर देता हूँ।"

उस समय, जब यह बहिन अपने मन में प्रभु को प्रार्थना कर रही थी:- "प्रभु! तुम अपने प्रियजनों की सहायता करते हो, तुम मुझपर अपनी कृपा करोगे और तुम मुझे असहाय नहीं छोड़ोगे।" इधर यह व्यक्ति धमकी दे रहा था। इस बीच एक तितली आई। वहां पर एक सोफा पड़ा था। उसके पीछे जा बैठी। उस बहिन के छोटे बेटे के मन में आया कि वह उस तितली को पकड़े। उसने उस व्यक्ति से सोफा हटाने की सहायता माँगी, ताकि वह तितली को पकड़ सके। जैसे ही दोनों ने सोफा हटाया, एक कागज गिर पड़ा। कागज उठा कर देखा तो वह रसीद थी, जिसे वह बहिन ढूँढ रही थी।

प्रभु अपने कार्य स्वयं करता है। केवल हम उसमें विश्वास रखें और

जो भी हो कहें :- "शुक्र! शुक्र" जो भी "शुक्र" करता है वह प्रभु को बहुत ही प्रिय है।

एक बहिन :- हम समझते भी हैं कि यह सब कुछ क्षणभंगुर है, फिर भी मोह नहीं जाता। यह मोह कैसे जाए?

दादा :- इस लिए हम बार बार इस बात का स्मरण करें। हम एक बार करते हैं फिर उसे छोड़ देते हैं। जैसे आज मैंने स्वयं को बार-बार कहा है:- "मुझे माफ़ करो, मुझे साफ़ करो, मुझे नया बनाओ, मुझे निर्मल बनाओ, मुझे पवित्र बनाओ, मुझे मिस्कीन बनाओ, मुझे शून्य बनाओ, मुझे शून्य बनाओ!" बार-बार कहने से हृदय के भीतर थोड़ी सजगता आती है।

एक बात को लीजिए : "यह सब क्षणभंगुर है।" इसे कहते हैं वैराग्य। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि दो बातें तुम ग्रहण करो : (1) वैराग्य और (2) अभ्यास। ये हैं दो टांगे जिन के सहारे मनुष्य दौड़ कर पार पहुँच सकता है। वैराग्य इसमें है कि पग पग पर स्वयं को कहते आयें कि "सब कुछ क्षणभंगुर है।"

एक बहिन :- जब तक व्यक्ति स्वयं अपने पैरों पर नहीं खड़ा हुआ है तब तक मन विचलित होता है। जैसे कोई राजा है तो वह तृप्त है कि वह राजा है। उसे कमाने की कोई चिन्ता नहीं है। वह आराम से बैठकर प्रभु को पुकार सकता है। इसी प्रकार हमें विश्वास कैसे आए?

दादा :- स्वयं में आत्म विश्वास हो कि हम राजा नहीं, परन्तु राजा की सन्तान तो हैं। उस राजा की ओर देखें तो हमें प्रतीत होगा कि हमारे पास तो सब कुछ है, फिर हमें क्या परवाह?

एक राजा का बेटा था। उसे मालूम ही नहीं था कि वह राजा का बेटा है। वह जब छोटा सा बालक था तब राजा ने मृत्यु से पहले उसे अपने भाई को सौंप दिया ओर उससे कहा :- "अब मैं जा रहा हूँ, जब तक यह

बालक बड़ा हो तब तक तुम राज्य चलाना। बड़ा होने पर तुम इसे राजगद्दी पर बिठाना।" राजा का देहान्त हो जाता है। राजा के भाई के मन में दग़ा आती है। वह क्या करता है? राजा के जो निकटतम साथी थे उन में से किसको कहीं और किसको कहीं भेज देता है और उनके स्थानपर दूसरे नये व्यक्ति नियुक्त कर देता है। उसने उस बालक को रसोई घर में नौकर करके रख दिया। बेचारे इस बालक को कुछ भी पता नहीं था। दूसरे नौकरों के साथ पल रहा था। खाना पीना मिलता रहता था। वह बहुत प्रसन्न रहता था कि वह राजा के रसोईघर में काम करता है। कहता था यह कोई कम बात है क्या? न जाने कैसे मेरा भाग्य खुला है जो मुझे यहाँ पर नौकरी मिली है। उसे क्या पता था कि वह स्वयं राजा है। पहले छोटा बालक था। अब बड़ा हो गया।

किसी अन्य नगर में एक दूसरा राजा था, जो इस पहले राजा का मित्र था। कितने वर्ष बीतने पर उसके मन में विचार आया कि चलकर अपने मित्र के राज्य को देखें और देखें कि उसके बेटे को, जो अब बड़ा हो गया होगा उसे राजगद्दी पर बिठाया गया है अथवा नहीं और यह भी देखें कि वह राज्य कारोबार कैसे चला रहा है। उसे किसी सहायता की आवश्यकता हो तो वह भी उसे दे दें। वे आते हैं और क्या देखते हैं कि एक वृद्ध राजगद्दी पर बैठा है। राजा उससे पूछते हैं कि, "तुम कौन हो?" वह कहता है :- "मैं राजा का भाई हूँ।" राजाने उससे कहा:- "यह राजगद्दी तो राजा के बेटे की है। यदि तुम उस बालक को राजगद्दी पर नहीं बिठाते तो फिर मैं अपनी पूरी सेना ले आता हूँ और तुम्हारे सब लागों को बता दूँगा कि तुम कपटी हो।" यह सुनकर यह वृद्ध कांपने लगता है। फिर इस बालक को खोजते हैं। बालक तो बोर्ची बनकर काम कर रहा था। इस बोर्ची से कहते हैं कि, "चलो चलकर राजगद्दी पर बैठो।" वह आश्चर्यचकित हो जाता है। कहता है:- "क्या कह रहे हो? कहीं मुझे राजा

मरवा न डाले।" उससे कहते हैं :- "राजा तो तुम हो।" बालक कहता है:- "मैं राजा कैसे हूँ?" अन्ततोगत्वा उसे पूरी बात समझा कर उसे राजगद्दी पर बिठाते हैं।

हमारी दशा भी ऐसी है। हम वास्तव में तो हैं राजगद्दी के मालिक परन्तु हमें इसका ज्ञान नहीं है। माया हमें इतना तो दबा कर बैठी है जो हम अपने को भिखारी समझ रहे हैं। हमें जो कुछ मिलता है, तो हम बहुत ही प्रसन्न हो जाते हैं। मेरे प्रिय! यह कौन सी बड़ी बात है, तुम तो राजा के बेटे हो। इस तुच्छ वस्तु पर तुम मोहित हो जाते हो? हमारी दशा तो ऐसी है। हमारा नफ़्स (Lower Self) तो राजगद्दी पर चढ़कर बैठा है। वह हम पर हुकम चला रहा है: ऐसा करो, वैसा करो। हमारी वासनाएँ, हमारे संस्कार हमसे ये खोटे काम करवाते हैं। यदि हम अपने होश व हवास में हों तो संभवत: हम ऐसा कदापि नहीं करेंगे। परन्तु हमसे ये खोटे काम कराये जा रहे हैं, क्योंकि हम समझ बैठे हैं कि हमारा राजा है हमारा अहं (ego) जिसे हम बड़ा मानते हैं। जब हमारा वास्तविक स्वयं (Self) जागृत होता है, तब वह बताता है कि :- "तुम राजा हो, यह राजा नहीं है।" उस बालक से कहते हैं कि :- "तुम राजा हो, यह राजा नहीं है।" अब बालक तैयार हो जाता है और चाचा गायब हो जाता है।

इसी प्रकार जब हमारा अहं भाग जाता है तब हमें वास्तविक स्वयं का ज्ञान होता है।

(पुणे : 2-8-1984)

BOOKS AND BOOKLETS
by J. P. Vaswani

From Hell to Heaven
Tear-Drops
Pictures and Parables
Glimpses
Whispers
A Child of God
You Are Not Alone!
A Day with Dadaji
The Kingdom of Krishna
From Darkness Into Light
A Mystic of Modern India
Doors of Heaven
Love and Laugh!
The Story of a Simple Man
Beloved Dadaji
Conversations with Dadaji
Feast of Love
Shanti Speaks
Glimpses Into Great Lives
Education: What India Needs
Life After Death
How to Have Real Fun Out of Life and other Talks
Notes from the Master's Lute
Chitra Darshan (Hindi)
Stories for Meditation
Heaven Can Wait
Little Lamps
How to Overcome Tensions
Life is a Love-Story
Daily Appointment With God
Begin the Day with God
Prophets and Patriots
You can Be a Smile Millionaire
Temple Flowers
How to Meditate
Prayers of a Pilgrim
Teach Me to Pray
The Simple Way
Invest in the Child
The Holy Man of Hyderabad
I Have Need of You
Ticket To Heaven
I Luv U, God!
101 Stories For You And Me
Joy, Peace Pills
Tips For Teenagers
Why Do Good People Suffer



साधू टी. एल. वास्वाणी